श्रीगोवर्द्धनभट्ट-ग्रन्थावली

★

महामहिम–

श्रीश्रीगोवर्द्धनभट्ट विरचिता

भज-निताइ गौर राधेश्याम ।
जय-हरे कृष्ण हरे राम ॥

परमाराध्य, संकीर्त्तनप्रचारक, प्रेममयविग्रह, श्रीश्रीराधारमण-
चरणदासदेव (बड़ेबाबाजी) के अनुगत, नित्यधामप्राप्त,
श्रीगुरुदेव, बाबाजिमहाराज के तथा उनके परम-
कृपापात्र, वृन्दाबनशतक के महान वक्ता,
नित्यधामगत,बड़े गुरुभैय्या श्रीगौरांग-
दासजी महाराज के पुनीतस्मरण
में यह ग्रन्थावली समर्पित
हुई ।

महामहिम-
श्रीश्रीगोवर्द्धनभट्ट-ग्रन्थावली

श्रीश्रीमन्महाप्रभुगौरांगदेवपरिकरप्रधानस्य श्रीरघुनाथ-
भट्टगोस्वामिनः शिष्यस्य, वाणीकारश्रीश्रीगदाधर-
भट्टमहोदयस्य वंशजेन महामहिम-
श्रीगोव्रर्द्धनभट्टेन
विरचिता।

यस्यां

(१) मधुकेलिवल्ली (२) श्रीराधाकुण्डस्तवः
(३) श्रीरूपसनातनस्तोत्रञ्च ।

☆
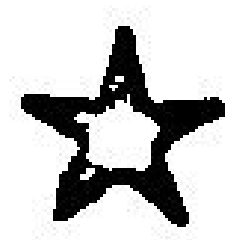
अर्थ सहायक :-
श्रीमुरलीधर आइदान, कलकत्ता ।

गौरपूर्णिमा (फाल्गुनी)
सं० २०१२
प्रथमावृत्ति—१०००

प्रकाशक :-
कृष्णदास
कुसुमसरोवर वाले

ग्रंथकार के वंशवृत्त—

श्रीमन्महाप्रभु के परिकर श्रीपादरघुनाथभट्टगोस्वामी के शिष्य

वाणीकार श्रीश्रीगदाधरभट्टजी —

रसिकोत्तंसजी (प्रेमपत्तनकार) — वल्लभरसिकजी (वाणीकार)

रसिकोत्तंसजी (प्रेमपत्तनकार)
- श्रीकृष्णभट्टजी
  - श्रीलालजीभट्टजी

श्रीलालजीभट्टजी
- श्रीगोवर्द्धनभट्टजी(ग्रन्थकार)
- श्रीव्रजपतिभट्टजी
- श्रीगोविन्दकृष्णभट्टजी

श्रीगोवर्द्धनभट्टजी(ग्रन्थकार)
- मन्नुलालभट्टजी
  - श्रीमाधवलालभट्टजी
    - श्रीनंदकुमारभट्टजी

श्रीनंदकुमारभट्टजी
- श्रीगिरधारीभट्टजी
  - बालमुकुन्दभट्टजी
- श्रीगोविंदलालभट्टजी
  - श्रीगोवर्द्धनभट्टजी (छुट्टनलाल)
    - श्रीकृष्णचैतन्यजी

बालमुकुन्दभट्टजी
- नंदनंदन
- देवकीनंदन
- गोपाललाल
- वल्लभरसिकजी

श्रीकृष्णचैतन्यजी
- जनार्द्दनजी
- विश्वम्भरजी
- नीलमणिजी

दो शब्द !
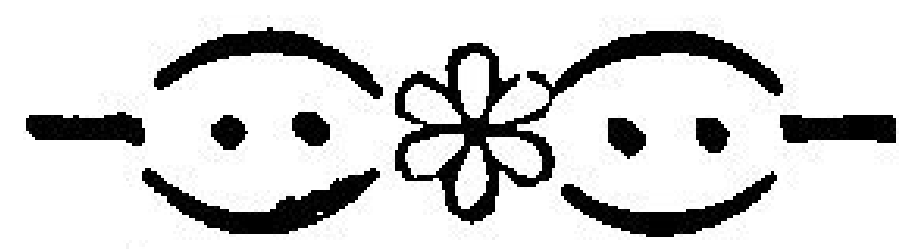
-○✻○-

करुणावरुणालय, रसराज-महाभाव मिलित विग्रह, प्रेमावतार, महाप्रभु श्रीगौराङ्गदेव की पुनीत कृपा से आज हम महामहिम श्रीगोवर्द्धनभट्टजी के द्वारा विरचित "श्रीरूपसनातनस्तोत्र" "श्रीराधाकुण्डस्तव" तथा "मधुकेलिवल्ली" नामक तीनों ग्रन्थ का प्रकाशन कर प्रेमी-जनता के समक्ष उपस्थित करने में समर्थ हुए। ग्रन्थकार का संक्षिप्त परिचय यह है कि-आप श्रीमन्महाप्रभु गौराङ्गदेव के पार्षदप्रवर, छः गोस्वामियों में एकतम श्रीरघुनाथ-भट्ट गोस्वामिपाद के शिष्य वाणीकार श्रीगदाधर-भट्टजी की शिष्य-परम्परा में उन्हीं के वंश में हुए हैं। मधुकेलिवल्ली के टीकाकार श्रीरामकृष्णभट्ट ने प्रथम श्लोक की टीका में "निज-गुरून्" यहाँ पर इस प्रकार की व्याख्या की कि-"पक्षे निजानां स्वकीयानां गुरवः श्रीमद्गदाधरभट्टनामानस्तेषां निजगुरुत्वात् तान् वन्दे" अर्थात् दूसरी व्याख्या यह है कि अपनी परम्परा के गुरु श्रीगदाधरभट्टजी हैं, उनकी हम वन्दना करते हैं। इस से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि वाणीकार गदाधर-भट्टजी की परम्परा में ही ग्रन्थकार श्रीगोवर्द्धनभट्टजी हुए हैं। स्वयं आपने श्रीरूप-सनातनस्तोत्र के प्रारम्भ में पञ्चम श्लोक पर अपने पिता को ही शिक्षा गुरु रूप में तथा राधाकुण्डस्तव के चतुर्थ-पञ्चम-षष्ठ श्लोकों पर अपने पिता की वन्दना और तृतीय श्लोक पर अपने गुरु का उल्लेख किया है। षष्ठ श्लोक पर अपने पिता की कथा का संसर्ग से प्रियादासादिक-वैष्णवों को भावमग्न हो जाना ऐसा निर्णय है। ऐतिहासिक विचार से प्रियादासजी की स्थिति

का समय लगभग १७४० सम्वत् से कुछ पहले से लेकर १७६४ सम्वत् के कुछ उपरान्त तक है। क्योंकि उनके द्वारा विरचित भक्तमाल की भक्तिरसबोधिनी-टीका में ग्रन्थ के समाप्ति-काल १७६६ सम्वत् तथा रसिकमोहिनी-ग्रन्थ में उसके रचना-काल १७६४ सम्वत् ऐसा उल्लेख है। अतएव श्रीगोवर्द्धन-भट्टजी प्रियादासजी के समसामयिक हैं यह स्पष्ट है।

ग्रन्थकार के कुलदेव श्रीराधामदनमोहनजी ठाकुर हैं जो कि श्रीगदाधरभट्टजी के द्वारा यमुना की रेणुका से युगल स्वरूप में माघी शुक्ला पञ्चमी (बसन्तपञ्चमी) के दिवस प्रगट किये गये हैं तथा उनके हृदय के परम सेव्य धन हैं। वह विग्रह वर्त्त-मान वृन्दावन में अटखम्भा (महल्ला) पर विद्यमान है। जिन की सेवा उक्त भट्टजी के वंशज ही परम्परा से करते आ रहे हैं। अभी भी वहाँ बड़ी धूमधाम से समाज (पदों का कीर्त्तन) आदि होता रहता है। वैष्णव समाज वहाँ एकट्ठे होकर भेद-भाव से रहित हो विभोरता के साथ समाज करते सुनते हुए परम प्रसन्नता को प्राप्त होते हैं। इस समय वृन्दावन में भट्टजी के वहाँ समाज बहुत प्रसिद्ध है। भागवत की कथकता तो भट्ट-वंश की निज सम्पत्ति है। श्रीपादरघुनाथभट्ट गोस्वामी जी के समय से अब तक भट्ट-वंश में भागवत के महान्-महान् धुरन्धर पण्डित-वक्ता हो गये हैं। वर्त्तमान समय वृन्दावन में श्रीयुक्त गोवर्द्धन-भट्टजी (छुट्टनलालजी) और श्रीयुक्त श्रीनित्यानन्दभट्टजी भाग-वत के अद्वितीय वक्ता माने जाते हैं।

श्रीगदाधरभट्टजी भागवत के अद्वितीय वक्ता थे। जिनके विषय में श्रीनाभाजी ने कहा है:-

सज्जन-सुहृद-सुशील बचन आरज प्रतिपालै।
निर्मत्सर निष्काम कृपा करुणा को आलै॥

अनन्य भजन दृढ़ करन धर्यो वपु भक्तनि काजै ।
परम धर्म को सेतु विदित वृन्दावन गाजै ॥
भागवत सुधा वरषै वदन काहू को नाहिन सुखद ।
गुणनिकर गदाधरभट्ट अति सवहिन को लागे सुखद॥

भट्टजी के वंश में श्रीगोवर्द्धनभट्टजी की चौथी पीढ़ी पर श्रीयुक्त श्रीनन्दकुमारजी भट्ट हुए जो कि भागवत के परमवक्ता थे। उनके विषय में श्रीराधाचरण-गोस्वामी जी ने "नव-भक्त-माल" में इस प्रकार कहा है:-

"श्रीनन्दकुमार उदार मति विदित भागवत भट्ट ।
होली जन्मोत्सव रचित हीय आवत हरि भट्ट ॥"

वृन्दावन में भट्टजी के वहाँ श्रीराधामदनमोहनजी की सदाचार पूर्ण बड़ी भावमयी सेवा होती है। जो दर्शन योग्य है।

मधुकेलिवल्ली की एक सटीक प्राचीन हस्तलिपी उक्त श्री-युक्त गोवर्द्धनभट्ट महोदय के पास में से मिली तथा भट्टजी के वंशज मान्यवर श्रीनन्दनन्दन-भट्टजी और उनके छोटे भ्राता श्रीयुक्त गोपालभट्टजी के पास से मूलमात्र दूसरी प्रति मिली। मथुरा हाथीगली-निवासी पण्डित श्रीकेशवदेव-पाण्डे महोदय के निकट मधुकेलिवल्ली की एक सटीक प्रति खण्डित अवस्था में मौजूद है। मधुकेलिवल्ली के टीकाकार श्रीरामकृष्णभट्टजी हैं। टीका के प्रारम्भ में-

"लावण्यामृतपूर्व्व-श्रीतारकापालिपालकः ।
राधाप्रीतिकृदेकात्मा विधुः स्फुरतु मे हृदि ॥"

यह मङ्गलाचरण श्लोक विद्यमान है। टीकाकार ने इस ग्रन्थ के उपसंहार में "इति श्रीरामकृष्णभट्टेण कृता मधुकेलिव्रतती-विवृत्यां पञ्चमः पल्लवः" ऐसा निर्देश किया है। इस टीका का अवलम्बन कर मैं ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद करने में समर्थ हुआ।

टीका के आधार पर ही अनुवाद किया गया है। "श्रीराधाकुण्ड-स्तव" की प्राचीन हस्तलिपी उक्त श्रीगोवर्द्धनभट्ट महोदय के पास मूलमात्र मिली। "श्रीरूपसनातनस्तोत्र" की एक प्राचीन हस्त-लिपी उक्त श्रीगोवर्द्धनभट्ट-महोदय के पास मौजूद है। यह ग्रन्थ पहले "बराहनगर श्रीभागवताचार्य्यपाटवाड़ी" से श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के द्वारा सानुवाद बंगाक्षर में मुद्रित हो गया है। जिस को हमारे पूज्य गुरुभ्राता, महान भावुक श्रीगोविन्द-काव्यतीर्थ महोदय ने पद्यबन्ध सुललित बंगानुवाद से अलंकृत किया है।

मधुकेलिवल्ली में ग्रन्थकार ने अपनी काव्य-प्रतिभा को चूडान्त-सीमा में दिखलाया है। निःसन्देह आनन्दवृन्दावनचम्पू के होरीविलास के प्रकरण को लेकर उसके आधार पर यह ग्रन्थ निर्माण किया गया है। ग्रन्थकार ने इस में अपनी वाणी-सुधा को अनुप्रास की घटा से छा दिया है। जब मधुमङ्गल, श्रीहरि को छोड़ कर स्वामिनी जी के पास आया तथा अपने को उनके शरण में आने की प्रार्थना करने लगा उस समय गम्भीर भाव-वती श्रीस्वामिनी कहने लगीं—

जुष्टं गुणैः सख्यरसेन पुष्टं घुष्टं यशोभिर्भुवि भावतुष्टम्।
शिष्टं हरिं वेणुधरं वरिष्ठं स्पष्टं कथं मुग्ध जहासि कष्टम्॥

अर्थात्—हाय हे मुग्ध! सर्व गुणों से युक्त, सख्यरस से पुष्ट, यश में प्रसिद्ध, भावों से सन्तुष्ट, स्वभाव में शिष्ट, वेणु बजाने में श्रेष्ठ उन श्रीहरि को स्पष्ट रूप में तुमने कैसे त्याग किया। यह बड़े दुःख की बात है। चतुर्थ पल्लव में विशाखा श्रीहरि के समक्ष श्रीराधा की विरह-दशा का वर्णन कर रही हैः—

यदा गोविन्द त्वं नहि नयनयोरध्वनि गत-
स्तदा राधा बाधाभरविवशधीराधिविधुराः।

निमेषं कल्पं सा सपदि मनुते दुःसहतरं
वरं वृन्दारण्यं विषमविषजालायितभरम् ।।४।२२

अर्थात्–हे श्रीगोविन्द ! सुनो । जब तुम उसके नयनों के सामने नहीं आते हो तब उस समय वह राधा अत्यन्त मनोवाधा से विवश होकर पीड़ा से व्याकुल हो जाती है । वह एक निमेष काल को दुःसहनीय कल्प की भाँति मानती है। सर्व श्रेष्ठ श्रीवृन्दावन उसके लिये विषम विष–ज्वाला की भाँति प्रतीत होता है ।

श्रीराधाकुण्डस्तव में ग्रन्थकार ने राधाकुण्ड को सर्वोपरि आराध्य रूप में निर्णय किया है । इसकी रचना वृन्दाबनशतक की परिपाटी से की गयी है । त्रयोविंश तथा चतुर्विंश श्लोकों में:–

धर्माधर्मविनिर्णयेषु निपुणाः कुर्वन्तु धर्म्मं नराः
केचित् संकलयन्तु योगमपरे ब्रह्मस्वरूपे मनः ।
अन्ये भक्तिसुखानुभूतिजनितामोदा भवन्तु स्फुटं .
नान्यद्वाञ्छति मे मनस्तु सरसीं श्रीराधिकाया विना ।।२३
श्रीराधासरसीगुणैस्तु रसना भूयात्सदालंकृता
तामेवानिशमुद्भट-प्रणयतश्चित्तं मम ध्यायतु ।
शीर्षं मे कुरुतां प्रणामविततिं तस्यां सुदैन्यावृतां
कर्णौ संश्रृणुतां मम प्रतिदिनं तस्या भृशं संस्तुतिम् ।।२४

श्रीरूपगोस्वामीपाद, श्रीरघुनाथदास–गोस्वामी आदिक महानुभावों ने ब्रज में श्रीराधाकुण्ड की ही सर्वोपरि महत्त्व दिया, पद्मपुराणादिक में साक्षात् राधिका-विग्रह रूप में राधा-कुण्ड का वर्णन है । महामहिम श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्ती महोदय ने भागवत की सारार्थदर्शिनी टीका में राधाकुण्ड के प्रादुर्भाव के वारे में बीस श्लोक के द्वारा सरस वर्णन किया है। पृथिवी के समस्त तीर्थ अधिकन्तु ब्रज के समस्त तीर्थ श्रीराधाकुण्ड में विराजमान हैं ।

रूपसनातनस्त्रोत्र भी "वृन्दावन-महिमामृत" अथवा "श्री-चैतन्यचन्द्रामृत" किम्वा "श्रीराधासुधानिधि" इन ग्रन्थों की रचना परिपाटी से लिखा गया है। प्रथम श्लोक में ही ग्रन्थकार ने अपने हृदयगत यथार्थ सिद्धान्त-अनुराग-निष्ठाओं को उघाड़ कर सब को दिखला दिया है। अस्तु ग्रन्थकार के इस अनर्घ्य देन के लिये जगत् चिर ऋणी रहेगा। मधुकेलिवल्ली तथा राधा-कुण्डस्तव के अनुवाद के संशोधन में श्रीयुक्त, वन्धुवर, स्वामी प्रेमानन्दजी, वृन्दावन वासी ने यथेष्ट सहायता देकर चिरवाधित किया। अवशेष में हम उन महानुभाव (बीकानेर) निवासी सेठ श्रीमान् हनुमानदासजी राठी को धन्यवाद देते हैं कि आपने इन तीनों ग्रन्थ का प्रकाशन में सम्पूर्ण अर्थ सहायता देकर वैष्णव जगत् का महान् उपकार किया। अलमति विस्तरेण:-

विनीत—

कृष्णदास

(कुसुमसरोवर वाले)
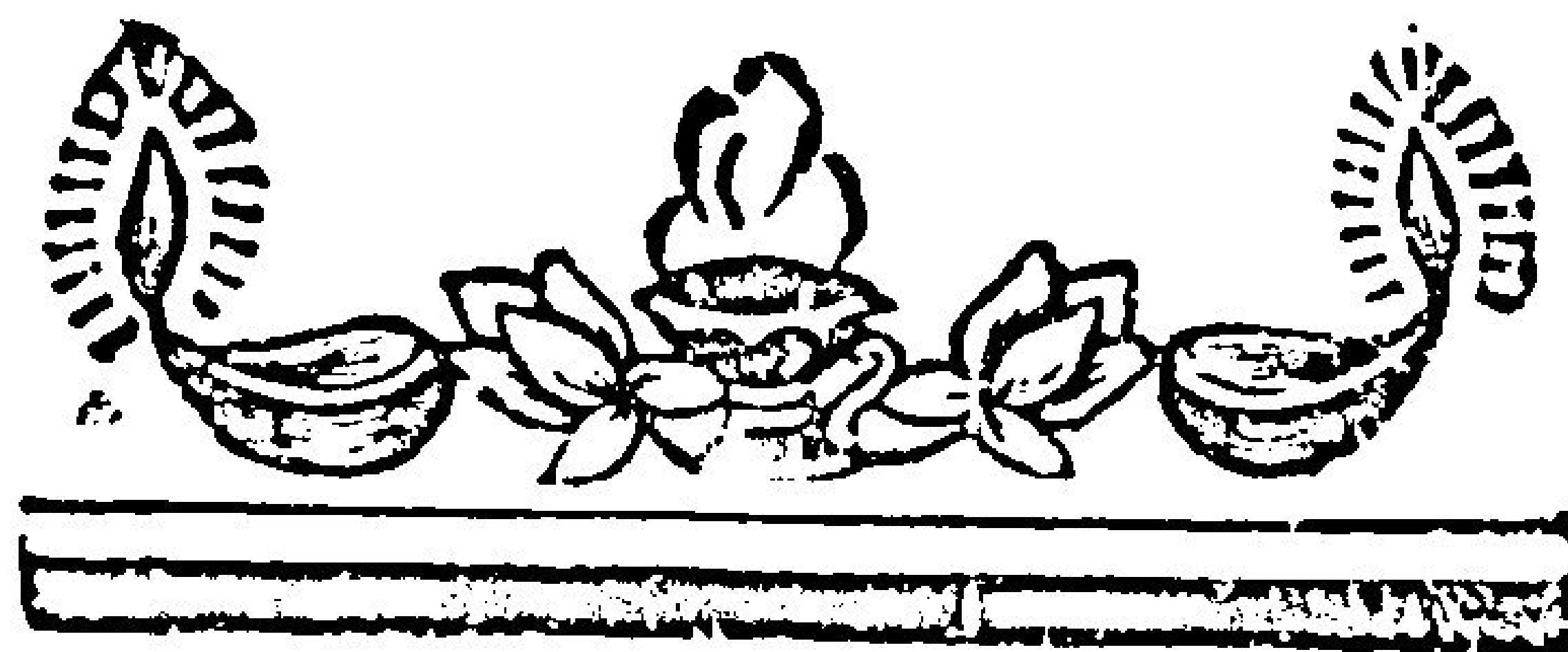
श्रीमाध्वगौड़ेश्वर संप्रदायाचार्य्य–
महामहिम, ग्रन्थकार
श्रीश्रीगोवर्द्धनभट्टजी महाराज

श्रीराधिकायै नमः

मधुकेलिवल्ली

गोविन्ददेवपदसेवनभूरितर्षान्
वर्षाकरान्निजगुरून्व्रजभावसिन्धोः ।
प्रेमार्त्तिदातृकरुणानरुणायमानान्
स्वीयाप्रबोधकुहरे मुहुरेव बन्दे ॥ १ ॥

श्रीश्रीगौरांगमहाप्रभुर्जयति

ग्रन्थकार श्री गोवर्द्धनभट्टजी प्रारम्भ में मंगलाचरण रूप अपने गुरु श्रीगदाधरभट्टजी की बन्दना करते हैं-श्रीगोविन्ददेव की चरणसेवा में महान् उत्कण्ठा वाले, ब्रज सम्बन्धी भावसागर की वर्षा करने वाले, प्रेमातुरता के दान करने में परम करुण, सूर्य्य की भाँति प्रभावशाली अथवा अपनी अबुध हृदय गुहा में सूर्य्य की भाँति प्रकाशशील गुरुदेव की वारम्वार बन्दना करता हूँ। सूर्य्य जिस प्रकार अन्धकार का नाश करने वाला होता है ठीक उसी प्रकार गुरुभानु हृदय कुहर में उदय होकर अज्ञान अन्धकार के नाशक होते हैं। अतः मेरी बन्दना से प्रसन्न होकर आप हृदय में महान् शक्ति का संचार कर प्रस्तुत मधुकेलिवल्ली नामक ग्रंथ की रचना में समर्थ बना देवें।

महाप्रभु के पक्ष में व्याख्या-"देवता होकर देवता की पूजा करें, भक्त बन कर श्रीगोविन्द की सेवा करें" इस न्याय के अनुसार स्वयं भक्त बन करके अपनी चरण-सेवा करने में परम उत्कण्ठित अथवा गोविन्द पद सेवा में भक्तों को परम उत्कण्ठित कराने वाले, निज व्रज भाव सागर के वर्षणकारी, प्रेमानुराग प्रदान में परम करुणावान, पीतवर्णधारी, अपने असाधारण गुरु, प्रेमावतार श्रीगौरांगदेव को हम वन्दना करते हैं॥ १ ॥

होलाकादिवसेषु मञ्जुलरसेऽत्रादेशतो गोकुला-
धीशस्यातुलवत्सलस्य नियमं संत्यज्य गोचारणे।
निःशंकं कुलकन्यकाभिरभितः कुर्व्वन्कलिं कौतुकी
राधावर्गजितो हरि विंजयते वृन्दाटबीचन्द्रमाः ॥ २ ॥
चित्तं को वितनोति गोकुलयुवद्वन्द्वस्य लोकत्रये
वक्तुं चित्रचरित्रमत्र मतिमांस्तर्काञ्चितः पण्डितः।
श्रीरूपामलपादपद्मयुगलश्रद्धालवेनोन्मदो
मन्दोऽहं रचयाम्यहो बिलसितं वृन्दाटवीनाथयोः ॥ ३ ॥

अब ग्रन्थकार प्रारिप्सित अपने अभीष्ट मधुकेलिवल्ली ग्रन्थ का उद्देश्य दिखलाते हुए प्रधान नायक श्रीकृष्ण की बन्दना करते हैं-मनोहर रस की वर्षा करने वाले होरी के दिनों में वात्सल्यसागर ब्रजराज के आदेश को पाकर कौतुकी श्रीहरि, गोचारणादि करने के नियम को छोड़ कर निर्भयचित्त से कुलकन्यकाओं के साथ कलह करते हुए राधिका-समाज में पराजित होकर विजय को प्राप्त हो रहे हैं ॥ २ ॥

अब ग्रन्थकार, रागमार्ग के आदि गुरु, ऊज्वलरसादि के वर्णन में वृहस्पति स्वरूप, पूर्व्वाचार्य्य श्रीरूपगोस्वामीजी की महिमा दिखलाते हुए उनकी ही कृपा से राधागोविन्द की विलासमयी ईस मधुकेलिवल्ली नामक पुस्तक की रचना में समर्थ हुए हैं यह इस श्लोक के द्वारा कहते हैं-तीन लोकमें तर्क परायण बुद्धिमान ऐसा कौन पण्डित है कि जो गोकुलविहारी युगल के मनोहर चरित्र के वर्णन में चित्त को लगा सकता है। अर्थात् तर्कशील हृदय में इस वस्तु का परम अभाव होता है। परन्तु श्रीरूपगोस्वामी के विमल पादपद्म युगल की श्रद्धा के कण मात्र से मैं मन्द भी उन्मत्त होकर वृन्दावनेश्वरी-वृन्दावनेश्वर के विलास का वर्णन कर रहा हूँ। श्रीरूप पाद पद्म की ऐसी ही महिमा है कि मन्दजन भी उसका आश्रय कर राधागोविन्द के विलास वर्णन में परम समर्थ हो जाता है ॥ ३ ॥

होलाकामत्तचित्तौ निजनिजगणगौ राधिकागोकुलेन्दू
वृन्दारण्येऽतिधन्ये द्रुमततिललिते मण्डिते भानुपुत्र्या ।
रम्ये नानाप्रसूनावलिभरलिरवै र्नादिते पत्रिरावै-
र्घुष्टे चिक्रीडतुस्तौ नवविमलरती गौरनीलाम्वुजाभौ ॥ ४ ॥
राधासख्यो विरेजुः सुललितवसना भूषणा भूषितांग्यो
गोविन्द प्रार्थनीयाऽविनययुततिरो वीक्षणा गौरभासः ।
वृन्दारण्यीयधन्याम्बुदमिलनकलावाप्तये भूरियोगै-
र्लब्धाकाराः किमीयुः क्षणरुचिनिचया भूतलं भावलुब्धाः ॥५
पार्श्वे वृन्दावनेन्दो र्वहुविधकुटिलोष्णीषवृन्दाः सखायो
गर्जन्तस्ते वभवु र्ललिततरपटाभूषणा यष्टिहस्ताः ।

तदनन्तर ग्रन्थकार होली क्रीड़ा का वर्णन करते हैं—अत्यन्त धन्य, वृक्षों से मनोहर, भानुनन्दिनी यमुना से परिमण्डित, नानापुष्पों से मनोहर, भ्रमरों से गुंजायमान, पक्षियों के शब्दों से परिपूर्ण, श्रीवृन्दा-बन में नव विमल रति परायण, गौर-नील कमल राधिका गोकुलचन्द्र दोनों आज होली क्रीड़ा में मत्त वाले होकर अपने-अपने समाज में बिराजित होकर क्रीड़ा करने लगे ॥ ४ ॥

उस समय गौरांगी, भाववती राधिका की सखियाँ अत्यन्त मनोहर वस्त्रों को धारण करती हुईं विविध भूषणों से शरीर को भूषित कर विराजमाना हो गयीं । वे सब ढीठ बनकर टेढ़ी-टेढ़ी देख रहीं थीं तथा सब कोई श्रीकृष्ण को चाँहती थीं । उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि आज वृन्दाबन में बिराजमान महान धन्य श्यामघन को प्राप्त करने के लोभ से विद्युत्समाज कोई महापुण्य के द्वारा आकार धारण करता हुआ भूमि पर उतर आया है ॥ ५ ॥

उधर वृन्दावनचन्द्र के समीप उनके सखागण गरजते हुये मतवाले से नाचते कूदते हुए, हाथों में रंगों की पिचकारियाँ-सुगन्धित कुंकुम—गुलालादि लेकर उपस्थित थे । वे सब टेढ़ी पगड़ी पहने हुए थे तथा

कूर्दन्तो मत्तचित्ताः कुलयुवतिचयं भीषयन्तोऽतिगन्धै-
र्यन्त्रैश्चूर्णैश्च नन्दात्मजनयनकलाप्रेरणोद्दामवीर्य्याः ॥ ६
भेरी-वंशो-विपञ्ची-मुरजमुखमनोहारिवाद्यावलीनां
व्योमस्पर्शी वभूवातुलललितचमूद्वन्द्ववर्त्ती निनादः ।
यन्माधुर्य्यं समन्ताद्विकसितमनसः पत्रिणोऽप्याकलय्य
घूर्णन्तो मौनवन्तो विनिमिषनयना मण्डलीभूय तस्थुः ॥७॥
नृत्यं लावण्यधाम्नो ब्रजपतितनयस्योन्मदं हर्षपूर्णं
घूर्णन्तं मित्रवर्गं विदधदतुलितश्रीभरं गानपीनम् ।
कम्रं कन्दर्पलीलानुकृतिरसकलालङ्कृतं राधिकास्यं
चक्रे नम्रं नटद्भ्रु स्मितयुतनयनं फुल्लनासं चलौष्ठम् ॥८॥
गोपालैः परितः प्रमोदभरितैस्तोष्टूयमानं ततो
गोपेन्द्रात्मजलास्यमद्भुतकलं वाद्योच्छलच्चेतसः ।

मनोहर पटाम्बर से विभूषित थे । उनके हाथों में लकुटियाँ थीं । वे सब नन्दनन्दन के नयन के इंगित के बल से महाबली बने हुये थे । उनको देखकर कुलयुवतियाँ भयभीत होने लगीं ॥ ६ ॥

भेरी-बंशी-बीणा-मृदंग आदि मनोहर बाद्यों का अतुल मनोहर शब्द दोनों पक्ष के बीच में होकर आकाश में पहुँचा । उसकी माधुरी से पक्षियों का मन प्रफुल्लित होने लगा । वे सब घूर्णा को प्राप्त हो गये तथा पलक शून्य मौनी होकर मण्डलीरूप से स्थित रहे ॥ ७ ॥

तब श्रीहरि ने नृत्य आरम्भ किया । लावण्यधाम, ब्रजराजनन्दन के हर्षपूर्ण, चक्राकार, मित्रवर्ग में अतुलनीय शोभा को देने वाला तथा गान से पुष्ट मनोहर उन्मद नृत्य ने आज नम्रा, नृत्यशील, स्मितनयना, फुल्लनासिका, चंचल ओष्ठ वाली राधिका के मुख को कामलीलानुकरण रूप रसकला से अलंकृत किया ॥ ८ ॥

प्रमोद से पूर्णहृदय वाले गोपों के द्वारा अभिनन्दित उस श्रीहरि के अद्‌भुतकला से परिपूर्ण नृत्य को देख कर मधुमंगल भी उमंग में

अत्यावेशचलद्भुजं पदलुठद्यज्ञोपवीतं द्रुतं
सोल्लासं मधुमङ्गलस्य पुरतो नृत्यं बभूवोन्मदम् ॥ ९ ॥
कस्तूरीलिप्तवक्त्रः कुटिलतममहोष्णीषभाक् स्थूललम्ब-
ग्रीवो होलास्ति होलेत्यतिपरुषगिरा गर्जनं भूरि कुर्वन् ।
श्रीमद्गान्धर्विकाद्या ब्रजनवतरुणी र्हासयन्मत्तचित्तः
स्वाङ्गं खर्व्वं विकुर्व्वन्नखिलसहचरानन्दमेष व्यतानीत् ॥१०
एताः का गोपवध्वो गिरिधरणसखे त्वं वृथा भीतचित्तो
मास्यादूरीकरोमि क्षण इह महतैर्ब्रह्मतेजः कदम्बैः ।
प्रोच्यैवं सत्यमुद्रां रचयितुमभितो मार्गयन्यज्ञसूत्रं
संभ्रान्तो भूरिहासं व्यतनुत चकितो नन्दसूनोः सखीनाम् ॥११

भरकर नाचने लगा। अत्यन्त आवेश से उस को भुजाऐं हिल ने लगीं तथा जनेऊ कंधे से गिर कर पाँव पर आने लगा। उसने उल्लास के साथ उन्मत्त नृत्य किया ॥ ९ ॥

वह मधुमंगल "होली है-होली है" इस प्रकार कठोर शब्दों के साथ बारम्बार गरजता हुआ अपने सर्व्वाङ्ग को ऐसा विकृत बनाता था कि जिससे व्रजरमणियाँ हँसने लगती थीं तथा समस्त सखा प्रसन्न हो जाते थे। उसका मुख कस्तूरी से सना हुआ तथा वह अत्यन्त टेढ़ी पगड़ी पहने हुये था और उसका गर्दन मोटा और लम्बा था ॥ १० ॥

"हे सखा गिरिधारि ! ये सब गोपरमणियाँ क्या कर सकती हैं, तुम भय मत करो, मैं अब क्षणभर में अपने महान् ब्रह्मतेज की राशि को प्रकट कर रहा हूँ" इस प्रकार कहता हुआ सत्यमुद्रा दिखाने के लिये चारों ओर जनेऊ ढूढ़ने लगा। परन्तु वह तो पहले से ही कन्धे से नृत्यावेश के कारण कहीं गिर चुका था । अतएव उसे न देख कर मधुमंगल को बड़ा आश्चर्य्य हुआ तथा नन्दनन्दन के सखाओं का परिहास करने लगा ॥ ११ ॥

गोपीगोष्ठ्याः समक्षं लकुटवरकरो द्वित्रिहस्तं चलित्वा
पश्चादागत्य गोपान् विहसितवदनानाह्वयन्सावमानम् ।
नागच्छन्तं वयस्यं व्रजपतितनयस्येङ्गितज्ञं विजानन्
गर्जन्दीर्घस्वरेण स्वजनपरिषदं भर्त्सयन्नाविवेश ॥ १२ ॥
मृषारुषा सोऽथ सखीनुवाच रे निर्बलाः स्वस्वगृहं प्रयात ।
बलं न मे युष्मदधीनमास्ते विद्रावयामि स्वरुचैव गोपीः ॥ १३
धूर्त्ता मां कैतवेन व्रजकुलरमणीमण्डले पातयित्वा
क्रोशन्तं नीरसिक्तं बहुभयविकलं कर्त्तुमाकांक्षमाणाः ।
मद्गायत्र्याः प्रभावं कलयत विततं यूयमद्यानवद्यं
येनायं भूरिमानी जितदनुजचयोप्यैजंत नन्दसूनुः ॥ १४ ॥

तब मधुमंगल लकुटिया लेकर दो तीन हाथ आगे चल कर फिर पीछे को मुड़ा तथा हँसते हुये गोपों को निरादर पूर्वक ताना मारता हुआ और ब्रजराजनन्दन के इङ्गित को समझने वाले सखा को आते हुये न देख कर ऊँचे स्वर से गाली सुनाता हुआ अपने समाज में प्रविष्ट हुआ ॥ १२ ॥

वहाँ जाकर मधुमंगल मिथ्याक्रोध दिखाता हुआ "अरे निर्बल कृष्णसखाओं ! अपने-अपने घर के लिये चले जाओ । मेरा बल अभी कहीं गया नहीं मैं अभी अपने प्रभाव से गोपियों को भगाता हूँ" इस प्रकार सखाओं को सुनाने लगा ॥ १३ ॥

ये धूर्त्ता गोपियाँ मुझे छल बल से अपने समाज के भीतर डाल करके जल से भिजाना और डराना चाहती हैं । हे गोपबालक ! तुम लोग लखे मेरा जनेऊ के अचूक प्रभाव को नहीं जानते हो कि जिस प्रभाव के कारण बड़ा अभिमानी, दैत्यनाशक यह नन्दनन्दन भी मेरा साथ नहीं छोड़ता है ॥ १४ ॥

दिष्ट्या त्वं गोकुलेशात्मज विमलमतिर्गोपसंगादिदानीं
धूर्त्तो जातोऽसि मानी तरलतरमना हास्यमास्ये तनोषि।
शिक्षित्वा मत्त एव प्रसभमविकलां चातुरीं मामपीह
प्रज्ञावन्तं समस्तद्विजकुलमहितं मित्रमौलिं दुनोषि ॥१५॥
श्रीराधा-संगिनीभि र्व्रजकुलरमणीरत्नरूपाभिराभि-
र्वृन्दारण्ये वराभि र्गिरिधर कलहं सर्व्वदाहं तनोमि।
यद्यासामेव मध्ये रचयसि परमां मामकीनामवज्ञां
मैत्री भ्रातर्मयेयं कथय पटुहृदा हा कथं पालनीया ॥ १६
दुष्टाः पुष्टास्त्वयैवात्मजवशजनकान् तेन मानं वहन्तो
गोपाला मेऽवमानं विदधति परितो न त्वमेको नितान्तम्।
गच्छामि श्रीयशोदासदनमतिमदं प्रोक्ष्य दूरे भवन्तं
प्राश्याम्यद्यै व मिष्टां मम दयिततरां दीयमानां रसालाम् ॥१७

हे कृष्ण ! भाग्यवश तुम व्रजराज के नन्दन बने हो । अब तक तो तुम्हारी बुद्धी अच्छी ही रही। परन्तु इन गोपों के साथ रह रह कर अब तुम धूर्त्त और अभिमानी हो गये हो। तुम्हारा मन भी बड़ा चञ्चल है। तुम मुझे देख कर मेरी हँसी उड़ा रहे हो। तुम ने मुझ से ही सब कुछ चतुराई सीखी है। अब तुम, बुद्धिमान, सर्व्वद्विजकुल पूजित, अपने मित्रवर मुझे दुःख देने लगे हो ॥ १५ ॥

हे गिरिधर ! मैं इस वृन्दाबन में तुम्हारे लिये ही सर्व्वदा व्रज-कुलरमणियों की रत्नरूपा राधिका की सहचरियों के साथ कलह करता आ रहा हूँ। अतएव खेद की बात है जो आज तुम हमको इनके बीच में परम अपमानित कर रहे हो। भैया ! कहो तो भला मैं किस प्रकार तुम्हारी इस मित्रता की रक्षा कर सकता हूँ ? ॥ १६ ॥

तुम ही अकेले मेरा अपमान नहीं कर रहे हो । तुम्हारे स्नेह के आधीन तुम्हारे पिता के द्वारा पालित ये सब दुष्ट गोपाल भी अभिमान में आकर मेरा अपमान करने लगे हैं। अतएव अत्यन्त अभिमानी तुम

क्रित्वा त्वां परिमुच्य गौरवयुतां श्रीराधिकालीसभां
गत्वाहं वितनोमि चाटुवचनं हाहारवोद्गारिणम् ।
या मैत्री व्रजराजनन्दन मया सार्द्धं तवासीत्सती
जानीहि प्रसभं त्वयैव सहसा तां त्रोटितां मानिना ॥ १८ ॥
इत्युक्त्वा परितो हिरण्यलकुटं धुन्वन्स तन्वन्मुदं
मित्रै र्भूरिनिवारितोऽपि चलितो श्रीराधिकासंसदम् ।
आयान्तं तमवेद्य मत्ताहृदयं गोपाङ्गनाः सर्वतो
निर्दिष्टा रुरुधु र्भ्रुवा ललितया कक्षं तुदन्तं करैः ॥ १९
आप्लाव्याथ विदूषकं वरजलैस्तं जागुडीयैर्गलाद्
आच्छिद्य व्रजयोषितो लकुटिकां चामीकरेणावृताम् ।
आकृष्य प्रसभं तदीयवसनं तेनैव गान्धर्विका-
निर्दिष्टा मुदिता ववन्धुरमितं क्रोशन्तमुच्चर्गहिः ॥ २० ॥

को दूर से त्याग करके श्रीयशोदा के निकट अभी जा रहा हूँ । वहाँ जाकर यशोदा के द्वारा दी हुई अतिप्रिय मिष्ट रसाला (रबड़ी) का पान करूँगा। ॥ १७ ॥

अथवा तुम को छोड़ कर गौरववती राधिकासखी की सभा में जाकर हा हा खाता हुआ स्तुतिवचनों से उन्हें प्रसन्न करूँगा । हे व्रज-राजनन्दन ! अब मैं जान गया कि हमारे साथ तुम्हारी जो मित्रता थी उसे तुम ने अभिमान में आकर हठात् तोड़ दी है ॥ १८ ॥

ऐसा कह कर मधुमंगल अपने सुवर्ण लकुट को चारों ओर घुमाते घुमाते आनन्द बढ़ाता हुआ राधिका के समाज में जा पहुँचा । उस समय मित्रों ने उसे बहुत मना किया परन्तु वह माना नहीं । तब गोपांगनाओं ने ललिता की भ्रकुटी के इशारे को पाकर बगल बजाती हुई मतवाली बन कर निकट आये हुए उसको घेर लिया ॥ १९ ॥

उस समय व्रजरमणियाँ विदूषक मधुमंगल को केशर-कुंकुमों के जल से भिगोने लगीं तथा उसके सुवर्ण रचित लकुट को छीन लिया

ततस्तु वद्धो मधुमङ्गलः श्री-राधां समूचे प्रमदाब्धिमग्नः ।
द्वयोस्तयो र्गोकुलनव्ययूनो र्विलोकितुं केलिकलाकलापम् ॥२१
राधे वीक्ष्य व्रजेन्द्रात्मजरचितमहं कैतवं तं विहाय
प्राप्तः संघं त्वदीयं शरणमभिलषन्पुण्यकारुण्यपूरे ! ।
त्वं त्वेताः प्रेर्य हंहो निखिलसहचरी रदय रक्षामकृत्वा
दिष्टया रिष्टया वटुं मां धरणिसुरवरं बन्धखिन्नं करोषि ॥२२
वन्धेनानेन दुःखं मम हृदि न तथा सर्व्वविद्यानिधाने
श्रीगान्धर्व्वे यथा तैः परिजनरचितै र्नर्म्मभि र्मर्म्मबाणैः ।
त्यक्त्वा गोपेन्द्रसूनुं तव पदनलिनाभ्यर्णमाप्तो ययाहं
तां श्रीवृन्दावनेशे नवबलरचितां रक्ष दर्पस्य मुद्राम् ॥ २३

गोपियों ने राधिका के इशारा पाकर उसके वस्त्र को खींच कर उसे पकड़ लिया और बलपूर्व्वक बाँध दिया । तब तो वह अत्यन्त चिल्लाने लगा ॥ २० ॥

तब तो बँधा हुआ मधुमंगल मन ही मन आनन्द समुद्र में डूबता हुआ गोकुल के नवीन युवती युवक राधा-गोविन्द की केलि-कलाओं की दर्शनेच्छा से राधिका के प्रति कहने लगा ॥ २१ ॥

हे राधे ! देखो, मैं अति कपटी उस ब्रजराजनन्दन को छोड़ कर तुम्हारी शरण में आया हूँ । हे पवित्र करुणाधारारूपिणि ! मुझे अपने साथ रक्खें । तुम्हारी ही प्रेरणा से तुम्हारी इन सब सहचरियों ने हमें बाँध लिया है । मैं तो एक ब्राह्मण बालक हूँ । इस प्रकार बाँधना तुम्हारे लिये उचित नहीं है । कहाँ तो शरणागतजन की रक्षा करनी उचित थी और कहाँ उसे बन्धन में डाल दिया गया ॥ २२ ॥

हे सर्व्वविद्यानिधान स्वरूपिणि श्रीगान्धर्व्विके ! इस प्रकार के बन्धन से मुझे कुछ ऐसा दुःख नहीं है जैसा कि उन परिजनों के द्वारा चलाये हुये नर्म्मरूप मर्म्मभेदीबाणों से विंध कर मैं दुःखी हो रहा हूँ। अतएव गोपराजनन्दन को छोड़ कर तुम्हारे चरण कमल के पास आया

श्रीराधे गोकुलेन्द्रात्मजदयिततमे भूरिसौभाग्यभारे
वर्य्ये माधुर्य्यधुर्य्ये कुलयुवतिकुलामृग्य सौन्दर्य्यसारे ।
नद्धं सख्येन शौरेः सुभगपरिजनै र्हन्त विज्ञाय वद्धं
मामात्मीयं बिचार्य्य प्रकुरु पुरुकृपापूरतः पूरिताशम् ॥ २४
ऊक्त्वैवं मधुमङ्गलोऽपि ललितां संबोध्य दूरस्थिता-
माहानन्तकलाकलापललितां प्राखर्य्य पर्य्याचिताम् ।
यां वीक्ष्येषदपि भ्रूवोः कुटिलतामातन्वतीं कौतुकाद्
वध्वा हस्तयुगं सदा वितनुते चाटूनि नन्दात्मजः ॥ २५ ॥
मां विद्धि स्वजनं विमुञ्च ललिते सन्देहमन्तर्गतं
रोषविष्टमतिं युतं परिजनैः कृष्णं विहायागतम् ।

हूँ । हे वृन्दावनेश्वरी ! मुझ शरणागत की रक्षा कीजिये । इस अभिमान मुद्रा का त्याग कीजिये । अथवा तो वृन्दावनेश्वर श्रीकृष्ण के प्रति अत्यन्त वलवती इस दर्पमुद्रा को दिखाइये ॥ २३ ॥

हे राधे ! हे गोकुलेन्द्रनन्दन की परमदयिते ! हे प्रचुर सौभाग्यवति ! हे श्रेष्ठे ! हे माधुर्य्य राशि स्वरूपिणि ! कुलयुवतियाँ आपके सौन्दर्य्यसार को ढूढ़ती रहती हैं । श्रीकृष्ण ने मेरे साथ सख्यता त्याग दी है ऐसा जान कर भी तुम्हारे परिजनों ने मुझे बाँध लिया । अब तुम मुझको अपना जन जानकर अतिशय कृपा प्रवाह के द्वारा मेरी आशा पूर्ण करो ॥ २४ ॥

ऐसा कह कर मधुमंगल फिर दूरस्थित, अनन्त कलाओं से मनोहरा, प्रखरता की देवी, ललिता को पुकारता हुआ कहने लगा, हे ललिते ! तुम वह हो कि जिसकी नेक टेढ़ी भौंह को देखकर नन्दनन्दन भयभीत होकर दोनों हाथ जोड़ते हुए सर्व्वदा चाटुकारिता करते रहते हैं ॥ २५ ॥

हे ललिते ! मैं आपका जन हूँ । मुझे छोड़ दीजिये । देखिये, श्रीकृष्ण के ऊपर मुझे कुछ सन्देह हो गया है । जिससे मैं नाराज

तद्राधाचरणारविन्दमधुना मत्ता वयं माधवं
हा हेत्यार्त्तरवं तवान्तिकगतं स्मित्वाजितं कुर्म्म हे ॥२६

ऊचे दधाना ललिता चमत्कृतिं
समीहमाना सुखमात्मसख्याः ।
कथं कथं वा वद वाग्वदूक
त्यक्तं वटो श्यामनटोरुसख्यम् ॥ २७

जुष्टं गुणैः सख्यरसेन पुष्टं
घुष्टं यशोभि र्भुवि भावतुष्टम् ।
शिष्टं हरिं वेणुधरं वरिष्ठं
स्पष्टं कथं मुग्ध जहासि कष्टम् ॥ २८

स आह सेर्ष्यं ललिते परीक्षसे जानीमहे गोष्ठमहेन्द्रसूनुम् ।
यदीयवंशीरवकालकूटदिग्धा विदग्धा मुमुहु र्भवत्यः ॥ २६

होकर परिजन युक्त श्रीकृष्ण को छोड़कर राधाचरणारविन्द में आगया। देखिये, अभी कृष्ण को लाकर तुम्हारे समीप हाहा विनती करवाता हुआ उसे पराजित कर दूँगा ॥ २६ ॥

तब अपनी सखी राधिका के सुख की सम्यक् कामना करने वाली ललिता आश्चर्य सा मान कर अपने सखा को कहने लगी। हे बोलने में परम चतुर वटु ! कहो कहो, तुमने श्यामनट के परम सख्य को किस प्रकार छोड़ दिया ? ॥ २७ ॥

हाय हाय ! हे मुग्ध ! जो सर्व्वगुणों से युक्त हैं, सख्यरस से पुष्ट हैं, यश में प्रसिद्ध हैं, भावों से संतुष्ट हैं, स्वभाव में शिष्ट हैं, वेणु बजाने में श्रेष्ठ हैं, उन हरि के स्पष्ट रूप से तुमने कैसे त्याग किया। यह तो बड़े दुःख की बात है ॥ २८ ॥

मधुमंगल ईर्षा सहित कहने लगा—हे ललिते ! तुम परीक्षा कर रही हो क्या ? जिसके वंशीनाद रूप कालकूट से जर्ज्जरित होकर परम

साध्वीव्रतध्वंसनवेणुनाद-माध्वीकविध्वस्त समस्तधैर्य्यम् ।
वर्यं विटानामतिधर्म्मचर्यं जानीहि कृष्णं तमनीतितृष्णम् ॥३०
निशम्य शौरेश्छलतोऽतिरम्यं गुणं चलौष्ठं दशती नवारुणम् ।
राधा महाभावभरात्तबाधा जगाद सा भूरिरसाऽलिकावशा ॥ ३१
वटो कठोराशय कोमलामलं कलङ्कहीनं तमलङ्कृतं गुणैः ।
कथं जगत्प्राणमनङ्ग सुन्दरं हा हा मुकुन्दं परिन्हातुमीहसे ॥३२
राधे सत्य वदति भवती हा सतीरत्नमौले
किंतु श्रीमानयमुपगतो नापरं नूत्नमानः ।
श्यामो नो गाः कलयति न वा पीतवासो न वंशीं
यद्भास्फूर्त्या तदमलपदाम्भोजधूलीमुपेतः ॥ ३३

विदग्धा तुम सब मोहित हो गयीं हो उस गोपराजनन्दन को मैं भली भाँति जानता हूँ । २९ ॥

वह सतियों के सतीव्रत को विध्वंस कर देने वाले वेणुनादामृत से सबका धैर्य्यनाश कर देने वाला है, लम्पट शिरोमणि है, धर्म्यपथ को उल्लंघन करने वाला है तथा अनीति में अत्यन्त लोलुप है । तुम श्रीकृष्ण को ऐसा समझो ॥ ३० ॥

इस प्रकार मधुमंगल के द्वारा श्रीहरि के अत्यन्त मनोहर गुणों को छल से सुनकर श्रीराधिका अपने अरुण चंचल ओष्ठ को दबाती हुई कहने लगीं । वे श्रीराधिका कैसी हैं कि महाभाव के गुरुभार से वाधा को प्राप्त महाप्रेम रस से व्याप्त हो रही हैं तथा प्रिय सखियों के आधीन हैं ॥ ३१ ॥

हे वटु ! हे कठोर हृदय । जो परम कोमल, कलंक रहित, गुणों से अलंकृत, जगत् के प्राण, कन्दर्प से भी अधिक सुन्दर हैं उन मुकुन्द को परित्याग करने के लिये तुम क्यों चेष्टा कर रहे हो ? ॥३२

हे राधे ! आप सत्य कहती हैं । आप तो सतियों की शिरोभूषण स्वरूपा हैं । देखिये, मैं उन पवित्र पादपद्म धूलि के पास आया हुआ

दिष्टयालीभिः कारितः प्रीतिशाली
वन्धो र्वन्धो भाग्यवत्या भवत्या ।
पृष्ठे कडूरद्य जाता महिष्ठे
स्वेदं कृत्वा हा तनोतीह खेदम् ॥ ३४
इत्युक्त्वा वटुना जहास पटुना नर्मण्यलं राधिका
कारुण्यामृतवन्यया प्लुततनु र्धन्येन्दुबिम्बानना ।
आगत्याथ मुमोच भूसुरमणिं मत्यायुतामुग्धया
नालोक्योपरि यज्ञतन्तुमुरसः पप्रच्छ तं विस्मिता ॥ ३५
तन्तुः कुत्र गतोऽद्य धन्यमतिमन्ब्राह्मण्यवन्मानितो
गोपालानवमन्य येन मनुषे स्वात्मानमेवोत्तमम् ।

हूँ कि जिन पद की कान्ति के ही स्फूर्त्तिमात्र से श्यामसुन्दर ढीठता छोड़ देते हैं, गोचारण भी भूल जाते हैं । अधिक तो क्या अपने पीतवस्त्र तथा वंशी की भी सुध भूल जाते हैं ॥ ३३ ॥

अपने से प्रेम रखने वाला ऐसे बन्धु को पाकर भाग्यवती आपने फिर भी मुझे सखियों के द्वारा बँधवा लिया । हे पूजिते ! ऐसे तो पीठ में फोड़ा हो रहा है, उससे महान कष्ट होता है । आपने फिर बाँध डाला । क्या दुःखी को और दुःख देना उचित है ॥ ३४ ॥

इस प्रकार नर्म्म परिहास में परम पटु वटु के बचनों को श्रवण कर चन्द्रवदना राधिका करुणामृत की बाढ़ से सराबोर हो उसके पास आ गईं और ब्राह्मण श्रेष्ठ मधुमंगल के बन्धन को खोल देने लगीं । उसके कन्धे पर जनेऊ न देख कर अचरज भरी आप उससे पूछने लगीं ॥ ३५ ॥

हे पवित्र ! हे बुद्धिमान ! हे ब्राह्मणपने का अभिमान रखने वाले ! तुम्हारी जनेऊ कहाँ चली गयी । तुम तो गोपों को अपमानित करते हुए अपने को उत्तम मानते हो । तुमको आचार विचार

त्वामाचारविचारधर्मरहितं विज्ञाय निर्वेदत-
स्त्यक्त्वा हन्त पलायते स्म यदयं तद्गर्व्वितो मा भव ॥३६

तन्त्वायत्तमहो महोन्नतमिदं राधे महो मामक
मा जानीहि चलालिकागणयुता जेष्यास्यहं मोहनम् ।
इत्युक्त्वा स चुकूर्द कक्षतलगं हस्तद्वयं वादयन्
नृत्यन् भंडगतिः प्रचण्डनिनदस्तेने मुदं योषिताम् ॥ ३७

राधासखीभि र्विकसन्मुखीभि-
र्वितन्वतीभिः सुकलाः सतीभिः ।
विहस्यमानः स हसन्समान-
स्ततान लास्यं चलकन्धरास्यम् ॥३८

आदि धर्म्म से रहित जानकर ही तुम्हारी जनेऊ दुःखित हो तुमको छोड़ कर कहीं चली गयी है । अतएव तुम गर्व्व मत करो ॥ ३६ ॥

"हे राधे ! यह मेरा ब्रह्म तेज जनेऊ के आधीन नहीं है । तात्पर्य्य अन्य ब्राह्मणों का तेज जनेऊ के आधीन रहता है और हमारा तेज स्वाधीन है, अतएव औरों से हमारी विलक्षणता है । देखो, तुम्हारी सखियों में अल्पबल होता है । इसलिये वे कृष्ण के आगे नहीं ठहर सकती हैं । यह सब मेरे बल का प्रभाव है" ऐसा कह कर वह मधु-मंगल बगले बजाता हुआ कूदने लगा और भांड़ की चाल से नाचता हुआ बड़ा भारी शब्द करने लगा, जिससे रमणीसमाज को अत्यन्त हर्ष हुआ ॥ ३७ ॥

इस प्रकार विकसित मुखी, नृत्य-गानादि कलाओं को विस्तार करने वाली, सती-रूपिणी, राधासखियों के द्वारा हँस जाने पर मधु-मंगल अपने कन्धों और मुख को चलाता हुआ मधुर नृत्य करने लगा ॥ ३८ ॥

संतोष्य राधां स कृतार्थमानी
जगाद गोविन्दविनोददानी ।
क्षुधातुरो हंत कृशोदरोहं
देह्यद्य पिष्टं सितया सुमिष्टम् ॥ ३६ ॥

चित्राह राधे सखि चित्रचर्य्यं—
स्तन्तुं विना भोद्यति विप्रवर्य्यः ।
आं ज्ञातमां ज्ञातमहो महोस्य
प्रहोणमार्दीनममुं वितेने ॥ ४०

अन्यथा व्रजयतेः सुतः कथं हातुमिच्छति विनीतसत्पथम् ।
सख्यमस्य विपुलं परंधनं हा समैक्षत न दोषरन्धनम् ॥ ४१.

इस प्रकार राधिका को प्रसन्न करा कर वह अपने को कृतार्थ मानता हुआ गोविन्द आनन्ददायिनी राधिका से कहने लगा । हे राधे ! हाय ! मैं क्षुधातुर हूँ । देखिये मेरा उदर सूख गया है । मुझे अब मिश्री से युक्त पेंठा (मिठाई) दीजिये ॥ ३६ ॥

उस समय चित्रा ने कहा—हे राधे ! यह ब्राह्मण बालक जनऊ के बिना भोजन किस प्रकार कर सकता है । हाँ मैंने जान लिया, जान लिया । इसका तेज क्षीण हो गया है, इस लिये यह कंगाल हो गया है ॥ ४० ॥

यदि ऐसा नहीं है तो विनीत, सत्पथ में रहने वाले, व्रजराजनन्दन क्यों इसको छोड़ना चाँहते हैं । अथवा विनीत, सत्मार्ग में रहने वाले इसी की मित्रता को क्यों छोड़ना चाँहते हैं । इसको ब्राह्मण जानकर महान् धन की भाँति अन्यमित्रों से अधिक इसका आदर करते थे तथा इसके दोषों को नहीं गिनते थे । यह इसकी महान् मूर्खता है कि यह उनको छोड़ रहा है ॥ ४१ ॥

चित्रेरितोद्दीपितरोषलेशः कर्त्तुं मुदा नर्म्मचयं द्विजेशः ।
धुन्वन् शिरो हुंकृतिमाशु तन्वन् जगाद राधां सगुणैरगाधाम् ॥४२

राधे विडम्बयति पश्य वटुं त्वदीयं
धूर्त्ता निवारय न कारय लाघवं मे ।
तन्तुं निधाय पुरतः शपथं विधाय
त्यक्त्वा हरिं तव जयेच्छुरिहागतोऽस्मि ॥ ४३ ॥

देह्यद्यैव दयानिधानहृदये निर्मुच्य नर्माग्रहं
नीतिज्ञे वृषभानुनन्दिनि नवं हृन्मोदकं मोदकम ।
इत्युक्त्वा विनतीकृते करयुगे चित्रा गृहाणेति सा
निःशंकं निदधे मुदा स्मितयुता पङ्कं तदा कौङ्कुमम् ॥४४॥

चित्रा के बचनों से कुछ रुष्ट होकर नर्म्मपरिहास करने के लिये वह द्विज बालक मधुमंगल मस्तक हिलाता हुआ हुँकार करने लगा तथा गुणों से अगाधा राधा के प्रति बोला ॥ ४२ ॥

हे राधे ! यह धूर्त्ता तुम्हारे ब्रह्मचारी की विडम्बना कर रही है, इसको मना करो । मुझे छोटा मत बनाओ । मैं सामान्य ब्राह्मण बालक नहीं हूँ । मैं जनेऊ की शपथ खाकर तुम्हारे सामने सत्य कर रहा हूँ कि हरि को छोड़ कर तुम्हारी जय की इच्छा से मैं यहाँ आया हूँ ॥ ४३ ॥

" हे करुणानिधान हृदयवाली महानीतिज्ञे वृषभानुनन्दिनि ! हँसी छोड़ कर आज मुझे हृदय मोदकारी नवीन मोदक दीजिये" इस प्रकार बिनती करने पर चित्रा ने उसके पसारे हुये हाथों में "लेओ मोदक खाओ" ऐसा कह कर हँसती हुई निःशंक होकर कुंकुम की डली रख दी ॥ ४४ ॥

प्रक्षिप्य पङ्क्तं स मृषा रुषाहतो
नो दोषलेशोऽपि तवास्ति चित्रे ।
अयं वटुः पश्चिमबुद्धिमान् हरिं
मुमोच यत्तस्य फलं नु भुक्तम् ॥४५

इति चलितमतिद्रुतं द्विजेशं त्वरितगतिर्ललिता निरुध्य यष्ट्या ।
व्रजसि कथमितो बुभुक्षितोऽसि प्रियमपरं परमं फलं विभुंक्ष्व ॥४६

ततः स्मित्वा राधा प्रचुरतरकारुण्यनिचिता
निवार्यं भ्रू भंग्या प्रखरललितां मोदकचयम् ।
वटुं संभोज्यामुं निजदयितकृष्णप्रियसखं
तुतोषालीयुक्ता प्रणयरसशालीनहृदया । ४७

राधां हरिप्रेमविकारभूषितामालोक्य सख्यामृतपूरप्लुषिताम् ।
विशाखिका मोदविधायिकाह श्रुतौ वसन्ती मधुरं हसन्ती ॥४८

वह उस डली को फेंक कर क्रोध करता हुआ कहने लगा—चित्रे ! तुम्हारा इसमें रत्ती भर भी दोष नहीं है । परम बुद्धिमान होकर के भी इस वटु ने जो हरि को छोड़ दिया है, उसी का यह फल भोगना पड़ रहा है ॥ ४५ ॥

ऐसा कह कर वह शीघ्रता से चलने लगा । परन्तु ललिता शीघ्रगति से उसके पास जाकर लठिया से उसे रोक कर "क्यों चले जाते हो, तुम भूखे हो, लो और एक फल देती हूँ शीघ्र खाओ" इस प्रकार कहने लगी ॥ ४६ ॥

तब महान करुणामयी राधिका हँसती हुईं भ्रू भंग के द्वारा प्रखरा ललिता को मना करती हुईं निज प्राणवल्लभ के प्रिय सखा वटु मधुमंगल को मोदकों का भोजन कराती हुईं प्रणयरस शालिनी आप भी सखियों के साथ अत्यन्त प्रसन्न हुईं ॥ ४७ ।

उस समय आनन्द विधात्री विशाखा सख्यामृत प्रवाह से प्लावित

वलीयान्खेदोऽयं समजनि कथं ते सखि तना-
वकस्मात् कस्मात्ते नयनयुगलं चाश्रु कलितम्।
सरोमाञ्चः कम्पस्तरलयति तेऽङ्गानि नितरा-
मपन्होतुं शक्या भवति महती न स्वरभिदा ॥ ४६
तिष्ठसि त्वमिह नम्रकन्धरं वन्धुरांगि हसितोद्यताधरम् ।
चेष्टितं वहसि विस्मयावहं यासि मोदमथवा विदूयसे ॥ ५० ॥
सहचरि ! हरिचन्दनाङ्कितायद्यु तिलवनिर्जितकोटिमन्मथाय ।
स्पृहयति गोकुलराजनन्दनाय स्वयमिह हन्त मनः करोमि किं वा॥५१

राधिका को हरिप्रेम विकारों से भूषिता देख कर हँसती हुई उनसे करुण मधुर वचन कहने लगी ॥ ४८

हे सखि राधिके ! तुम्हारे शरीर में इस प्रकार बलवान् खेद क्यों उत्पन्न हो गया है । हठात् तुम्हारे दोनों नयन कमल क्यों अश्रु से भर गये हैं ? अहो रोमाञ्च के साथ-साथ कम्प निरन्तर तुम्हारे अंगों को चंचल कर रहा है । तुम्हारी वाणी गद्‌गद हो गयी है । उस महान् स्वरभंग को तुम रोकने में असमर्थ हो रही हो ।। ४६

हे सुन्दरांगि ! इतने पर भी तुम कंधे को झुका कर ठहरी हुई हो । तुम्हारे अधर में कुछ हास्यरेखा देखने में आ रही है । चेष्टा भी तुम्हारा विस्मयकारी हो रही । न जाने तुम प्रसन्न हो अथवा दुखी हो ॥ ५०

तब राधिका कहने लगीं, हे सहचरि ! जिनके अंग हरिचन्दन से अङ्कित हैं, जिनके अंग की कान्ति करण कोटि कामदेव को पराजित कर रही है उस गोकुलराजनन्दन श्रीकृष्ण के लिये मेरा मन कामना कर रहा है । अपने आप ही मेरे मन की यह दशा हो गयी है । मैं क्या करूँ ॥ ५१

इत्थं सा ब्रु वती सतीकुलमणिः कामप्यपूर्वां दशां
सद्यः प्राप्नुवती चमत्कृतिचिताः स्वालीततीः कुर्व्वती ।
स्वीयं नामसमुद्गिरन्तमसकृद्ध शीलवं शृण्वती
गोविन्दं नयनाञ्चलेन रुरुचे राधा चिरं पश्यती ॥ ५२ ॥

इति श्री मधुकेलिवल्यां कुसुमासवकौतुको
नाम प्रथमः पल्लवः ॥ १

तं भुक्तवन्तं परितृप्तिमन्तं विज्ञाय विज्ञा निभृतं चलाक्षी ।
विलोडयामास घटं सुदेवी तदीय मूंर्द्धोपरि जागुड़ीयम् ॥ १
नानाविधैः काञ्चनयन्त्रनिर्गतै
धारामयैरम्बुधरै रिवाम्बुभिः ।
माध्वीकमत्ता इव गोकुलाङ्गना--
स्तमाप्लुतं चक्रु रमन्दकौतुकाः ॥ २

इस प्रकार कहती हुईं सतीशिरोमणि श्रीराधिका निज सखियों को चकित करती हुई शीघ्र ही किसी अपूर्व्व दशा को प्राप्त हो गयीं तथा अपने नाम का उच्चारण करने वाले वंशीरव को बारम्बार सुनती हुईं नयनों की कोर से श्रीकृष्ण को देखने लगीं ॥ ५२

लड्डू भोजन करने वाले मधुमंगल को तृप्त जानकर उस समय चंचलाक्षी सुदेवी उसके मस्तक के ऊपर कुंकुम का घड़ा रख कर मथने लगीं ॥ १ ॥

मधुपान से मतवाली गोकुल रमणियाँ अत्यन्त कौतुक के साथ सुवर्ण पिचकारियों से निकलते हुये नाना प्रकार के जल की धाराओं से मेघ की भाँति उसे तराबोर करने लगीं ॥ २ ॥

श्रीराधिका सौख्यकरं करम्बितं
सन्नर्मभिः श्यामसखं विदूषकम् ।
वटुं नटन्तं नटचातुरीभटं
समं समन्ताद्वनिता नितान्तम् ॥ ३ ॥
नानाविधैश्चूर्णचयैः सुगन्धै र्नानाविधाकारमिमं विधाय ।
जघ्नुस्तदा भूरिमदा मृणालै र्नालीकनेत्रा नवनीतिमत्यः ॥४
कुतुकी कुसुमासवोऽसकौ हरिमानन्दयितुं सदोत्सुकः ।
मुदितोऽप्युदितोरुकौशलः प्रियमेवाकुलधीरिवाजुहाव ॥ ५
हे गोपालक गोकुलेन्द्रतनयाधीरीकृताभीरिका-
मानध्वंसनवंशनाद सुवलश्रेष्ठोज्वलप्राण हे ।
नव्यामभोदतनो मनोज्ञचपलाचामीकराभास्वर
श्रीदामप्रिय रामसोदर हरे दामोदर ! त्राहि माम् ॥ ६

ब्रजवनिताओं ने श्रीराधिका के सुखकारी, हास्य-परिहास शील, श्यामसुन्दर के सखा, प्रचण्ड नृत्यचातुरी दिखाने वाले, वटु मधुमंगल को चारों ओर से घेर लिया ॥ ३

नाना प्रकार के सुगन्धित चूर्णों से उसकी नाना प्रकार की आकृति बनाकर मतवाली, कमलनयनी, नवीननीतिमती गोपांगनाओं ने उसे कमल की डंडियों से प्रहार किया ॥ ४

वह कुसुमासव मनसुखा कौतुक करता हुआ घबड़ाया हुआ अपने सखा श्रीकृष्ण को बुलाने लगा, क्यों कि उन्हें सुख देने के लिये ही वह सर्व्वदा उत्सुक रहता था । यद्यपि इस प्रकार वह गोपियों की करतूत से प्रसन्न ही हो रहा था तथापि बड़े कौशल के साथ दुःख का भाव प्रकाश करता हुआ वह उन्हें बुलाने लगा ॥ ५ ॥

हे गोपाल ! हे गोकुलेन्द्रनन्दन ! हे चंचल गोपियों के मान नाशक

इति कुसुमासववाचमाह शृण्वन्रसिकमणि र्व्रजचन्द्रमाः समानः ।
कलयसि न वटोः किमार्त्तनादं सुवल चलाशु वलेन मोचयामुम्॥७

न कुरु विलम्बमलं विमुञ्च शंकां
व्रजवनितानिकुरम्वतः सखे त्वम् ।
मितवचनो मतिमान्सुधीरचेता
न खलु पराभवमाप्नुयात्कदापि ॥ ८

राधा विद्युदलंकृतं हरिघनं द्रष्टुं सदैवोत्सुकौ ।
स्वीयौ लोचनचातकौ सुखयितुं चातुर्यभारं दधत् ।
आदृत्य व्रजराजनन्दनवचो मन्दं चलन्कौतुकी
सानन्दं सुवलो विवेश ललितं गोपाङ्गनामण्डलम् ॥९

वंशीनाद करने वाले ! हे सुवलप्रिय ! हे उज्ज्वलसखा के प्राण ! हे नवघन शरीर ! हे मनोहर ! हे विद्युत् तथा सुवर्ण की भाँति पाटाम्बर पहरने वाले ! हे श्रीदाम के प्रिय ! हे वलराम के छोटे भैया ! हे हरे ! हे दामोदर ! मेरी रक्षा करो ॥ ६ ॥

इस प्रकार मधुमंगल के वचनों को सुनकर रसिकमणि व्रजचन्द्र गर्व सहित सुवल से कहने लगे—हे सुवल ! क्या तुम वटु के आर्त्तनाद को नहीं सुन रहे हो । चलो, शीघ्र ही वलपूर्वक उसे छुड़ाओ ॥ ७

हे सखा सुवल ! इसमें विलम्ब मत करो । व्रजवनिताओं की ओर से तुम किसी प्रकार की शंका मत करो । क्यों कि थोड़े बोलने वाले, मतिमान, अत्यन्त धीरचित्त तुम कभी पराभव को प्राप्त नहीं हो सकते हो ॥ ८

राधा रूपिणी विद्युत् के द्वारा अलंकृत हरि रूपी मेघ के दर्शन करने के लिये सदैव उत्सुक अपने दोनों लोचन चातक को सुखी करने के लिये परम चतुर सुवल ने व्रजराजनन्दन के वचनों का आदर

राधाह स्वगतं मनो मम सदा मां खेदयस्यातुरं
श्यामालोककृते कदापि न मनागालम्बसे धीरताम् ।
विस्रम्भं भज कृष्णकेलिजनितानन्दं ध्रुवं लप्स्यसे
प्राणेशप्रिय एति हत सुवलो मन्नेत्रयोः पद्धतिम् ॥ १०
सुवलोऽप्यवलोक्य राधिकाली:
स्मितसहितं संहितं जगाद वृन्दाम् ।
अयि किं कुसुमासवोऽसकौ
रसकौतुकयकरोन्महारवम् ॥११
नर्मकर्मठमति र्वटुरूचे धूर्त्त कृष्णसख किं त्वमागतः ।
राधिकापदसरोजमाश्रितस्त्वां सखीन्नगणयामि माधवम् ॥ १२

किया और मन्द मन्द चलकर आनन्द के साथ गोपांगना-समाज में प्रवेश किया । उसका प्रवेश अत्यन्त मनोहर था तथा वह परम कौतुकी था ॥ ९

राधा अपने मनमें कहने लगी "अरे मन ! तुम मुझे क्यों व्याकुल कर रहे हो, तुम श्यामसुन्दर के दर्शन के लिये किञ्चित् मात्र भी धीरता को नहीं धारण कर रहे हो, विश्वास रक्खो । तुम श्रीकृष्ण के केलिजनित आनन्द को अवश्य प्राप्त करोगे । देखो प्राणवल्लभ का प्रिय सुवल मेरे नेत्रों के आगे आ रहा है ॥ १०

सुवल राधिका की सखियों को देख कर मुस्कराता हुआ वृन्दा के प्रति हित वचन कहने लगा, हे वृन्दे ! यह हमारा मधुमंगल क्यों इस प्रकार का रस कौतुकमय महान् शब्द कर रहा है ? ॥ ११ ॥

हास्य परिहास में अत्यन्त आसक्त चित्त वाले, वटु सुवल को देख कर कहने लगा-"अरे धूर्त्त कृष्णसखे ! तुम क्यों यहाँ आ गये हो ? मैंने राधिका पादपद्म का आश्रय ले लिया है । अतएव मैं माधव तथा उसके सखाओं को कुछ नहीं समझता हूँ ॥ १२ ॥

आक्रोशितं भूरिभयानुकृत्या परीक्षितुं प्रेमभरं परं हरेः।
ज्ञातस्तव प्रेषणतः स एष गच्छाशु मा तिष्ठ समक्षमक्ष्णोः॥१३
विहस्य तद्वाचमनाकलय्य निवार्य्य नादं हरिकार्य्यविज्ञः।
विचार्य्य राधां चरणाम्बुजातविनीतदृष्टिः सुबलो जगाद ॥१४
श्रीराधे शृणु नन्दनन्दनगिरं सद्वन्दनीयेहिते
मन्मित्रं कुरुषे रुषेव परुषं विप्रं विषण्णं कथम्।
लोके यर्हि भवादृशा अपि जनः कारुण्यशून्यान्तराः
प्रीतिस्तर्हि रसातलं गतवती कां वा दशां यास्यति ॥ १५
एव ब्रु वन्तं वरबुद्धिमन्तं तं तुङ्गविद्या तनुनर्म्मतुंगा।
आगत्य तूर्णं निभृतं सघूर्णं तेनेऽजनं लोचनयोरपूर्णम् ॥१६

मैं हरि के महान प्रेम की परीक्षा के लिये ही इस प्रकार महान भय का अनुकरण करके चिल्लाया था। परन्तु उसने स्वयं न आकर तुमको ही भेजा। अब मैं उसे जान गया। जाओ शीघ्र यहाँ से चले जाओ। मेरे नेत्रों के सामने मत ठहरो ॥ १३ ॥

उसके वचनों को सुना अनसुना करके हँसता हुआ हरिकार्य्य करने में परम चतुर सुबल वहाँ के कोलाहल को बन्द करता हुआ सोच समझ कर श्रीराधिका के चरण कमलों में विनीत दृष्टि करके कहने लगा ॥ १४ ॥

हे राधे ! हे साधुओं की वन्दनीय चेष्टा वाली ! सुनिये ! नन्द-नन्दन ने ऐसा कह भेजा है कि मेरे मित्र ब्राह्मण बालक की क्यों इस प्रकार दुर्दशा कर रहीं हो ? इस जगत् में आपकी जैसी भी यदि करुणा शून्यहृदय की हो जायेंगी तो प्रीति तो रसातल में चली जायँगी तथा न जाने उसकी क्या दशा हो जायगी ॥ १५ ॥

उस समय परिहास कुशल तुंगविद्या इस प्रकार से बोलने वाले,

स आह राधां वनिता भवत्या स्वध्यापिताः किं पुरुभाग्यवत्या ।
अनेनसानेन मया नयेन युतेन या नीतिमिमा न तन्वते ॥१७॥
ललिता ललितस्मिताननाह रसवलिता कलितैव नीतिरेषा ।
दिवसेषु रसावहेषु रम्या रसविद्धान्तरनागरालिगम्या ॥ १८
वृन्दाह नन्दात्मजमित्रयुग्मं
विमोचनीयं वहुमाननीयम् ।
राधे मनश्चोर किशोरवाणी
नो नीतिमत्यापि विचारणीया ॥ १९
गिरिधारिमतानुसारिणी यदवोचद्विपिनाधिकारिणी ।
तदमुं परिमुञ्च राधिके वटुसहितं सुवलं हिताधिके ॥ २०

अत्यन्त बुद्धिमान सुवल के पास शीघ्रता से आकर चुपचाप उसके नेत्रों में गाढ़ा काजल आँजने लगी। उस से सुवल के नेत्र भर गये ॥ १६

वह राधा से कहने लगा, देखिये इन वनिताओं ने महाभाग्यवती आपके द्वारा क्या यही पाठ पढ़ा है ? आपने उन्हें क्या यही सिखाया है ? शुद्ध नीति वाले हम इस प्रकार की अनीति को अच्छी नहीं समझते हैं। अहो तुम्हारी पढ़ाई अति विचित्र है ॥ १७ ॥

उस समय मनोहर हास्यमुखी रसवती ललिता कहने लगी– यह नीति रसीले दिवसों में देखने में आती है। ये तो रसीली होली के दिन हैं। इसको तो रसज्ञों में उत्तम नागरराज की कोई आलियाँ ही जानती हैं ॥ १८ ॥

तब वृन्दा कहने लगी—"हे राधे ! नन्दनन्दन के इन दोनों मित्रों को अत्यन्त मान्यता के साथ छोड़ देना चाहिये । तुम्हारे मनचोर किशोरराज के वचन की ओर तो ध्यान दो। तुम तो महान् नीतिवती हो, इस का बिचार करो ॥ १९

तब ललिता बोलीं–हे राधिके ! विपिन की अधिष्ठात्री देवी इस

इति ललिता वचनं निशम्य रम्यं
सपदि तथेङ्गितमाततान तन्वी ।
चतुरतरौ प्रति माधवं यथा तौ
सुबलवटू त्वरितं प्रतस्थतुः ॥ २१

आगत्य मानी मधुमङ्गलोऽब्रवीद्
विमोच्य गोविन्दसखायमागतः ।
विचारयं पुण्यं कुशलेन पूर्णं
तूर्णं किमप्यानय पारितोषिकम् ॥ २२

उच्चै र्विहस्य सुबलः स जजल्प वाम-
माः किं वदामि पुरतस्तव नन्दसूनो !
यन्मे गुणानविगणय्य विनीय मानं
मानी मृषा गदति मन्दमति र्वतान्यत् ॥२३

बृन्दा ने जो कुछ कहा है सो ठीक है। क्यों कि बृन्दा तो गिरिधारी के मत में चलने वाली है। अतएव वटु के साथ इस सुवल को छोड़ दीजिये। आप तो हितमयी हैं ॥ २० ॥

इस प्रकार ललिता के मनोहर वचन को श्रवण कर कृशोदरी राधिका ने ऐसा करने का आदेश दिया। महान् चतुर सुबल-मधुमंगल दोनों माधव के पास शीघ्र चलने लगे ॥ २१

उस समय अभिमानी मधुमंगल श्रीकृष्ण के पास आकर कहने लगा। हे गोविन्द ! तुम्हारे ये सखा मुक्त होकर आ गये। मेरे प्रचुर पुण्य का तो विचार करो कि जिससे मैं सकुशल आ गया हूँ। अब शीघ्र कुछ तो पुरष्कार दे डालो ॥ २२

तब सुबल उच्चहास्य करता हुआ मनोहर बोलने लगा। हे नंद-नन्दन ! तुम्हारे सामने अधिक क्या कह सकता हूँ। यह मधुमंगल अभिमानी है, इसकी बुद्धि अब बिगड़ गयी है। यह किसी का उत्कर्ष

क्रोशन्तमुच्चैरवलाभिवेष्टितं बिचेष्टितं ताडितमम्बुजातैः ।
जानीहि शौरे मम गौरवादियं मुमोच राधा करुणानिधिः स्वयम् ॥२४

सभामयास्यत्सुवलो न चेदयं
तां राधिकायाः सखिभिर्दुरासदाम् ।
वटो र्गतिस्तर्हि परा भविष्यद्
या तां तु जानासिहरेऽन्तरे त्वम् ॥ २५

तदा मुदायं कुसुमासवोऽवदद् वदाद्य रुष्टः कथमेष धृष्टः ।
विराजमानं नयनद्वयं हरे पराजयं व्यञ्जयतीह सांजनम् ॥ २६
सुवलोऽपि वलानुजप्रियोप्यवलाभिः कथमेष निर्जितः ।
विदितं किल भूसुरे हरे लघुताकृल्लभते पराभवम् ॥ २७

नहीं देखना चाँहता है । यह मेरे गुणों को उड़ा करके यहाँ आकर कुछ का कुछ कह रहा है ॥ २३

यह तो ऊँचे स्वर से चिल्लाता ही रहा । अवलाएं इसे चारों ओर से घेर कर कमल की डंडियों से पीट रही थीं । हे शौरि ! तुम निश्चय जानो कि करुणासागर राधिका ने स्वयं मेरे ही वचनों का आदर करके इसे छोड़ दिया ॥ २४ ॥

यह सुवल यदि सखियों के कारण दुर्गम्य राधिका की सभा में नहीं जाता तो इस वटु की महान दुर्दशा हो जाती । हे हरे ! इस बात को तुम्हारा मन स्वयं जानता है ॥ २५ ॥

तब तो मधुमंगल हँसता हुआ कहने लगा, देखो यह सुवल महान् धृष्ट है । यह मेरे सन्मान को सह नहीं रहा है । इसकी आँखों को तो देखो । गोपियों ने इसे पकड़ कर खूब जोर से काजल रगड़ दिया है । इस से तो इस की पराजय ही प्रगट हो रही है । उस समय इसका वल कहाँ चला गया था ॥ २६ ॥

तब मधुमंगल बोला कि— हे हरे ! यह सुवल भी तो वलभैया आपका प्रिय है । यह फिर अवलाओं से कैसे हार गया । इस का भी

इति हसन्तमनन्तकुतूहलं विरचयन्तमनन्तसखप्रियम् ।
स सुवलो नवलोभमतिर्वलावरजमोदकृतौ चटुमूचिवान् ॥२८

भ्रातस्तव वचः सत्यं वटो सर्व्वं ब्रवीषि यत् ।
वलीयान्विहितो दोषस्त्वामानेतुं गतं मया ॥ २६
राधामथाधाय मनस्यमन्द-वाधानुरागाधिकजातमाधिम् ।
आवृत्य चित्रं हरिराह मित्रं विदूषणं हासकलाविभूषणम् ॥३०
मधुमङ्गल ! भूरितुन्दिलं वरमङ्गं वहुरंगसंगलम् ।
इदमन्यदिवाद्य दीव्यति ध्रुवमाभिस्तव सेवनं कृतम् ॥ ३१

वल उस समय कहाँ चला गया था । हाँ मैंने जान लिया कि ब्राह्मण में तुच्छ बुद्धि रखने के कारण इस का इस प्रकार पराभव हुआ है॥२७

इस प्रकार अनन्त कौतूहल करने वाले, अनन्त श्रीहरि के प्रिय सखा, हास्यकारी मधुमंगल के प्रति नवीन विहार की रचना करने वाला वह सुवल, वलानुज के प्रमोद के लिये चाटुवचन कहने लगा ॥ २८

हे भैया वटु ! तुम जो कुछ कह रहे हो वह सब सत्य हैं । परन्तु मैंने आज यही एक बड़ा भारी दोष किया कि जो तुम को लाने को गया ॥ २६ ॥

तब श्रीहरि अपने मनमें अत्यन्त वाधा पूर्ण अनुराग के अधिकता से उत्पन्न पीड़ा को दवा कर तथा राधा को मन में धारण कर हास्य-कला का विभूषण स्वरूप अपने निर्दोष मित्र से कहने लगे ॥ ३० ॥

हे मधुमंगल ! आज तो तुम्हारा तोंद बड़ा मोटा हो रहा है । तुम्हारा शरीर अनेक रंगो से रंग कर सुन्दर दिखाई दे रहा है । और दिनों से आज कुछ निराली ही शोभा प्रकट हो रही है । निश्चय ही गोपियों ने तुम्हारी खूब सेवा की है ॥ ३१ ॥

यादृशी मधुरमोदकावली यादृशी ललितगीतकाकली ।
यादृशी रुचिरवाद्यसंततिस्तादृशी तव गणे न राजति ॥ ३२
तदधुना व्रजराजसुताऽमुना न कुरु गर्व्वभरं बरवेणुना ।
चल सखे नवखेलनचातुरीं सफलयाप्नुहि लोचनजं फलम्॥३३
वटुवचनामृतसिक्तचित्तभूमिर्व्रजपतिनन्दन एष सुन्दरेशः ।
वरतनुमणि राधिकाभिलाषी स्मितसहितं बिततान वेणुनादम्॥३४
तं तत्राश्रुत्य धीराप्यतनुतनुगतस्वेदनीरा सती सा
तूर्णं घूर्णावती सा व्रजपतितनयप्रेमपीयूषपूर्णा ।
रोमाञ्चै र्दन्तुराङ्गी नयनगतजला स्तम्भिनी पाण्डुवर्णा
हस्तं राधा विशाखाभुजशिरसि समाधाय रेजे विहस्ता ॥ ३५

तब मधुमंगल बोला—हे श्रीकृष्ण ! वहाँ जिस प्रकार मधुर मोदकावली देखने को मिली तथा जैसी मनोहर गीतावली सुनने को मिली है और वहाँ जितने मनोहर वाद्य यन्त्रावली हैं वैसा तो तुम्हारे समाज में कुछ भी नहीं है ॥ ३२ ॥

अतएव हे ब्रजराजनन्दन ! इस वेणु मात्र से अधिक गर्व्व मत करो । अब चलो । नवीन क्रीड़ा चतुराई को सफल करो तथा लोचन के होने का फल प्राप्त करो । अर्थात् उन सब सामग्री के दर्शन कर नेत्रों को सफल करो ॥ ३३ ॥

इस प्रकार मधुमंगल के वचनामृत को सुन कर श्रीहरि की चित्त-भूमि कोमल होकर भीज गयो । सुन्दर शिरोमणि ब्रजराजनन्दन आप ने वरांगी राधिका की अभिलाषा से मन्दहास्य सहित वेणुवादन किया ॥ ३४ ॥

उस मनोहर वेणुनाद को श्रवण करके धीरजवती श्रीराधिका भी काम बाण से जर्जरित हो गयीं । ब्रजपतिनन्दन के प्रेमामृत पान से परिपूर्णा राधा की रोमावली काँटे से खड़ी हो गईं तथा शरीर स्तम्भित

अङ्गुल्या दर्शयन्ती मधुरिमनिवहं गीतनीतं मुरल्या
राधायाः सात्त्विकोत्थप्रणयपिशुनता कारिणं नापनेयम् ।
पश्यन्ती काननान्तः फलदलकुसुमश्रीभरं भूरुहाणां
वृन्दा गोविन्दभावप्रकटितपरमानन्दवृन्दाह चित्राम् ॥ ३६

चित्रे कः स्तौति वेणुं ब्रजपतितनयस्याधरे राजमानं
मानं विध्वंसयन्तं सकलकुलवधूमानसे सन्तमन्तः ।
यन्नादे कर्णमूलं गतवति न मनाग्धीरतामावहन्त्यो
नित्यं नीवीकचालीकुचपटचलनं नैव जानन्ति तन्व्यः ॥३७

हो गया । आप स्वेदजल से भीग कर घूर्णा को प्राप्त हो गयीं तथा आपकी कान्ति पीली पड़ गयी । नयनों में जल भर आया और आप विशाखा के कंधे पर मस्तक रख कर विराजमान हुईं ॥ ३५ ॥

राधिका के भाव का दर्शन कर आनन्द निमग्ना वृन्दा अंगुली उठा कर चित्रा के प्रति कहने लगी । हे चित्रे ! माधुर्य से भरा हुआ, मुरलीगान से उत्पन्न, प्रणय को प्रकाशित करने वाले, राधिका के सात्विक विकारों को देखो कि जिन को छिपाना अत्यन्त असम्भव हो रहा है । इस प्रकार वन के वृक्ष-लताओं के फल-पत्र-कुसुमों की शोभा को देखती हुई गोविन्द के भाव से अत्यन्त आनन्दिता वृन्दा ने चित्रा के लिये कहा ॥ ३६ ॥

हे चित्रे ! ब्रजराजनन्दन के अधर में विराजमान, समस्त कुल-रमणियों के मान को विध्वंस करने वाले, वेणु की भला कौन स्तुति कर सकता है ? जिसका नाद कर्णमूल में पहुँच जाने पर अंगांगी रमणियाँ नेक भी धीरज को नहीं धारण कर सकती हैं । उनके नीवी, केश और कुच के बंधन सब खुल जाते हैं तथा उन्हें मालूम भी नहीं हो पाता है ॥ ३७ ॥

नो शृण्वन्ति गुरोर्गिरं न च कुलं पश्यन्ति पत्युः पितु-
र्मन्यन्ते न सतीव्रतं न च भयं लोकापवादादपि ।
धावन्ति प्रसभं हरेरभिमुखं वासं सदा कानने
वाञ्छन्तीह नवांगना श्रुतिपथं याते मुरल्या रवे ॥३८

पश्याद्याकर्ण्य वंशीकलमतिविकला प्यश्रु गाम्भीर्यधुर्य्या
चर्य्या वर्य्या सतीनामधिधरणि कलामाधुरीणां धुरीणा ।
औदासीन्यं विधाय स्तिमितमतिगती रंगदेव्या सहेयं
तन्वाना रम्यगोष्ठीं नवयुवतिमणी राधिका मां धिनोति ॥ ३९

भेरी-वंशी-विपञ्ची-मुरजमुखमनोहारिवाद्यावलीतो
निर्यातं व्योमयातं ध्वनिमथ ललिताकर्ण्य गोविन्दवृन्दे ।
उन्नीतामर्षवीता सकलसहचरीमौलिरेषा विनीता
मज्जन्ती मोदपूरे व्यतनुत वचनं राधिकां भर्त्सयन्ती ॥ ४०

मुरली की ध्वनि कानों में पड़ने पर रमणियाँ न तो गुरुजन के वचनों को सुनती हैं, न पति और पिता के कुल की ओर देखती हैं न सतीव्रत को मानती हैं और न उनको लोकापवाद से ही कोई भय लगता है । बस वे हरि की ओर बड़ी वेग से भागने लगती हैं और उनकी इच्छा सदा बनबास की ही होती है ॥ ३८ ॥

देखो आज बंशीशब्द को श्रवण करके परमगाम्भीर्य्यवती, सतियों में श्रेष्ठ, पृथिवी पर सर्वकला माधुरी की सागररूपिणी, नवयुवतीमणि श्रीराधा उदास गतिशून्य होकर रंगदेवी के सहारे से रम्यगोष्ठी करती हुई मुझे चकित कर रही हैं ॥ ३९ ॥

उस समय भेरी-बंशी-बीणा-मृदंग आदि मनोहर वाद्यों की ध्वनि आकाश में पहुँच गयी । उसे देख कर गोविन्द के समाज को सुनाती हुई और आनन्दधारा में डूबाती हुई समस्त सखियों की शिरोमणि ललिता ईर्षा के साथ राधिका की भर्त्सना करती हुई मनोहर वचन कहने लगी ॥ ४० ॥

राधे घूर्णसि किं कुरु द्रुतमये यत्नं जये मानिनो
गोविन्दस्य कथं न पश्यसि पुरो गोपानिमान् गर्जतः ।
गर्वं सर्व्वममुं करोमि नितरां खर्व्वं बलाद् वल्लवा-
धीशस्यात्मजमानतं तव पुरो जित्वा नयामि स्फुटम् ॥ ४१

तदाशु चल चंचले कलकलं वलं चाखिलं
वलानुजबलान्तरागतमलं विलोकामहे ।
नवामलकुलावलावलयरत्नमौले सदा
कदापि न सहामहे ब्रजमहेन्द्रसूनोर्मदम् ॥ ४२

तावच्चन्द्रमुखि प्रगल्भमनसो वल्गंत्यमी वल्लवा
यावत्ते पदपल्लवा न कलहं हंसी कलैः कुर्व्वते ।
यन्मञ्जुध्वनिना ब्रजेन्द्रतनयो नो वंशिकां चन्द्रकं
यष्टिं हारमपीह पीतवसनं जानाति गाः स्वं सखीन् ॥४३

हे राधे ! क्यों भ्रमित हो रही हो । अभिमानी गोविन्द को पराजित करने की चेष्टा करो । क्या तुम सामने नहीं देख रही हो कि ये सब गोप गरज रहे हैं । मैं अभी सब के गर्व्व को खर्व्व कर देती हूँ तथा गोपराज के पुत्र श्रीहरि को बलपूर्व्वक जीत कर तुम्हारे सामने प्रत्यक्ष ले आती हूँ ॥ ४१ ॥

हे नवीन पवित्र कुलांगनाओं के कंकण के रत्नमणि स्वरूपा रमणियों के चूड़ामणिस्वरूपिणी श्रीराधे ! हम कभी भी ब्रजराजनन्दन के अभिमान को नहीं सह सकती हैं । अतः शीघ्र ही चलो, चलो । वलानुज के बल-सामर्थ्य को तथा इस मनोहर कोलाहल को देखें तो सही । मैं अकेली ही सब कुछ करने में समर्था हूँ । फिर भी दिखाने के लिये तुम्हें बुला रही हूँ ॥ ४२ ॥

हे चन्द्रमुखि ! जब तक तुम्हारे पादपल्लवों में हंसिनी के कलरब के साथ कलह करने वाला नूपुर नहीं बजता है तब तक ही ये अभि-

इति ललिता-वचसा रसान्तरेण
ब्रजवनितावलि मौलिरत्नमाला।
वृषरवितनया ततान वाचं
प्रणयचिता हसितानतांबुजाता ॥ ४४

सख्यो यूयं कुरुध्वं त्वरितगति जयायोद्यमं पश्यतैषां
गोपानां भूरिगर्व्वं ब्रजपतितनयावद्धवीर्य्यावृतानाम्।
तत्तूर्णं सर्वमेषां कलकलमभितः पूरितं काननान्तः
सद्यो निःसारयामो वितनुत कलशान् पीतगन्धाम्बुपूर्णान् ॥४५

इत्थं वृन्दावनेशा विरचितमधुरादेशवीता नितान्तं
गीतान्युच्चै र्विनीता जगुरधिकमहानन्दयन्त्यो निजालीम्।

मानी गोप गरजते हैं। उस मनोहर नूपुरध्वनि को श्रवण कर ब्रजराज-नन्दन, बंशी-मयूरचन्द्रिका-लकुट-हार-पीतवसन को गिरते हुए नहीं जान पाते हैं। और तो और गौओं को और अपने सखाओं को भी भूल जाते हैं। यहाँ 'चन्द्रमुखी' इस प्रकार सम्बोधन करने का तात्पर्य्य यह है कि उन गोपों के मुख कमल आप ही आप मलिन हो जायेंगे तथा हम सब कुमुदिनी पुल्लायमान हो जायेंगी ॥ ४३ ॥

इस प्रकार ललिता के वचनों से रसान्तर में आकर ब्रजवनिताओं की मस्तक रत्नमाला स्वरूपिणी, बृषभानुनन्दिनी श्रीराधा प्रणय के साथ असंख्य कमलों को तिरस्कार करती हुई मनोहर बोलने लगीं ॥ ४४ ॥

हे सखियाँ! तुम सब शीघ्र ही जय के लिये उद्यम करो। देखो, इन ब्रजराजनन्दन के वीर्य्य के प्रभाव से बलवान गोपों का प्रचुर अभिमान किस प्रकार हमारे सन्मुख नृत्य कर रहा है। अतएव शीघ्र ही इनके बृन्दावन व्यापी कोलाहल को अभी समाप्त कर देना चाँहिये। पीले, पुष्पों से सुगन्धित जल से पूर्ण कलशों को लाओ ॥ ४५ ॥

सर्वा गोपेन्द्रसूनोरभिमुखमखिलां भीतिमाधूय भूयो
भावा रावामृताम्भोनिधिरसरचनं काननं पूरयन्त्यः ॥ ४६
नृत्यं रम्यं चकार नतमुदितमतिः प्रीतिशाखा विशाखा
चित्रा चित्रं विपंच्या निनदमतिकलं गानरंगं सुदेवी ।
वृन्दा माद्यन्मनस्का स्मितललितमुखी मध्यदेशे मृदङ्गं
कुर्व्वाणा मन्दयाना विविधगतिततीराततानातिमाना ॥४७॥
तन्व्यंग्यः पट्टवासभाजनगणं हस्ते निधायापरा
मूर्द्ध न्याधाय परा हिरण्यकलशं गन्धाम्बुपूर्णं ययुः ।
काश्चित्पुष्पधनुः शराऽऽवलियुता केलीरणोत्कण्ठिताः
काश्चित्कौसुमयष्टिमण्डितकरा राधापुरो रेजिरे ॥ ४८

इस प्रकार वृन्दाबनेश्वरी के मनोहर आदेश को पाकर उनको प्रसन्न करती हुई अथवा तो अपनी अपनी सखियों को महान आनन्द देती हुई गोपरमणियाँ विनय के साथ ऊँचे स्वर से मनोहर गान करने लगीं तथा भय रहित होकर गोपराजनन्दन के प्रति चलने लगीं । उस समय उन महाभाववतियों के रसमय शब्दामृत सागर के द्वारा समस्त वृन्दाबन भर गया ॥ ४६ ॥

उस समय प्रणयशालिनी विशाखा ने प्रसन्न होकर नम्रता के साथ मनोहर नृत्य किया, चित्रा ने अत्यन्त मनोहर विचित्र बीणा बादन के द्वारा सब की उत्कंठा बढ़ाई, सुदेवी ने गान किया, मन्दहास्य से मनोहर मुखवाली वृन्दा सबके मध्य मे अभिमान के साथ विविध गति से मृदंग बजाने लगी ॥ ४७ ॥

कोई कोई कृशोदरी पाटाम्बर की पोटली हाथ में लेकर, कोई मस्तक पर रख कर, कोई गन्धजल से परिपूर्ण सुवर्ण कलस को मस्तक में रख कर वहाँ आ गयीं तो कोई केलियुद्ध के लिये उत्कण्ठित हो बाणयुक्त पुष्प धनुष लेकर और कोई हाथ में पुष्प छड़ी लेकर राधिका के सामने आकर विराजमान हो गयीं ॥ ४८ ॥

काश्चित्काञ्चनरत्नयन्त्रचयतो धारामयैर्निर्गतै-
रम्भोभिर्वरजालमम्बरतलं गोपावलास्तेनिरे ।
अन्याः कौसुमनव्यकन्दुकवरैर्घ्नन्त्यो मिथो हर्षतः
कृष्णं स्मारशरप्रहारविकलं चक्रु र्मृगीलोचनाः ॥४६

करं विन्यस्येयं भुजशिरसि सख्याः सरसिजं
विधुन्वत्या मन्दोज्वलहसितधौताम्बुजमुखी ।
पदाम्भोजारुण्यां चितविपिनभूमिर्नवनवा-
नुरागांधा राधा हरिमवकलय्याह ललिताम् ॥ ५०

दिशः श्यामाः कुर्व्वन् प्रियसखि नवीनांगिकरुचा
स्मितज्योत्स्नाजालैर्विशदयति भूयो वनभुवम् ।
चमत्कारं तन्वन्मम नयनयोरंजनतनु-
र्धृतेश्चौरः कोऽयं चटुलयति चेतश्चतुरधीः ॥ ५१ ॥

किसी ने तो सुवर्ण-रत्नमय जलयन्त्रों की जलधाराओं से आकाश को वाणों की भाँति छा दिया है और कोई कोई पुष्पों के गेंदों को परस्पर के प्रति हर्ष के साथ फेंकने लगीं । इस प्रकार से मृगनयनी गोपांगनाओं ने श्रीहरि को कामवाणों के प्रहार से व्याकुल कर दिया ॥ ४६ ॥

तब नवीन अनुराग से उन्मत्त राधिका, सखी के कंधे पर हस्तकमल रखती हुईं तथा उन्हें हिलाती हुईं श्रीहरि को देखती देखती ललिता से कहने लगीं । उस समय उनका मुख कमल मन्द उज्वल हास्य लहरियों से धौत हो रहा था तथा चरणकमलों की लालिमा से समस्त वनभूमि लाल हो गयी थी ॥ ५० ॥

हे प्रियसखि ! यह कि जो अंजन की भाँति श्याम शरीर वाला, नवीन युवा, चतुर बुद्धिवाला पुरुष कौन है ? जो अपनी अंगकान्ति से समस्त दिशाओं को श्याममय कर रहा है तथा मन्दहास्य किरणों

स्मयन्तीं तामालीममलरसशाली न मनसं
विलद्दयहीणाह प्रियकलनजानन्दविकृतिः ।
सखि ज्ञातं कृष्णः सुवलनिटिलं हंत कुटिलं
समालम्ब्यापाङ्गं किरति मयि गोष्ठीं च कुरुते ॥ ५२
तदा राधां वृन्दाविपिनममलेन्दीवरमयं
वितन्वानां मानाञ्चितचपलनेत्रान्तकलनैः ।
प्रियामायान्तीं तां निभृतमनुरागाप्लुतमतिः
समालोक्योवाच व्रजपतिसुतस्तत्र सुवलम् ॥ ५३
चलन्ती खेलन्ती प्रियसहचरी नृत्यमतुलं
प्रकुर्व्वाणा गानं सपदि सुखयन्ती स्मितमुखी ।
नखेन्दुज्योत्स्नाभि र्भुवमरुणयन्ती सरसिजं
सखे केयं वाला भ्रमयति मनो मत्तनुर्मपि ॥ ५४

से समस्त वन प्रदेश शुभ्रमय करता हुआ और मेरे नेत्रों में चमत्कार उत्पन्न करता हुआ मेरे चित्त को चंचल कर रहा है ॥ ५१ ॥

उस समय लज्जाशील राधिका प्रियदर्शनानन्द से विकार को प्राप्त होकर हास्य करने वाली विशुद्ध रस[illegible] सखी से कहने लगीं—हे सखि ! यह मैने जान लिया कि श्रीकृष्ण [illegible]वल के कुटिल [टेढ़े] मस्तक का आश्रय करते हुए मेरे प्रति टेढ़ी दृष्टि डाल रहे हैं और मुझ से बोलना चाहते हैं ॥ ५२ ॥

उस समय मान युक्त चपल नेत्रों के कोर से अवलोकन करके वृन्दाबन को सुन्दर नीलकमलमय करने वाली, अपनी ओर में आने के लिये अग्रसर प्रिया राधिका को देखकर गाढ़ अनुराग से सनी हुई मतिवाले व्रजराजनन्दन सुबल से कहने लगे ॥ ५३ ॥

हे सखे ! कहो तो स्मितमुखी यह वाला कौन है कि जो प्रिय सहचरियों के साथ चलती खेलती हुई अतुलनीय शोभमान नृत्य-गान

सदा दृष्टाऽदृष्टा स्फुरति यदियं प्राणदयिता
न तच्चित्रं शौरे वसतिरनुरागस्य विषमा।
जनानां यत्स्थानां गतिरतिदुरूहा मतिमतां
त्यजेमा मा मूर्च्छामिति सुबलवाचाह स हसन्॥ ५५
अहो राधागाधागुणसमुदयै र्भूरिमुदयै
ध्रुवं धात्रा चित्रौषधिरिह कृतेयं मम कृते।
न वा किं वा रम्यामलकलरवा मंजुलगतिः
सुखेलं खेलन्ती विलसति सखे कल्पलतिका॥ ५६
मुरल्याहं राधां सततमिह गायामि विपिने
सदा राधां ध्यायाम्यतिपुलकितः स्तम्भिततनुः।

के द्वारा सबको सुख दे रही है और अपने पदनखचन्द्रकान्ति से वन-भूमि को अरुणमय कर रही है तथा हाथ में लीलाकमल घुमाती हुई मेरे शरीर और मन को विदीर्ण कर रही है॥ ५४॥

"जो निरन्तर दृष्टा होने पर भी अदृष्टा है अर्थात् तुम सदा उस को देखते हुए भी अनदेखी जैसी समझते हो। ऐसी तुम्हारी यह प्राण-प्रिया सामने ही में विराजमाना हैं। हे शौरे! इसमें कोई आश्चर्य्य की बात नहीं, कारण कि अनुराग का देश बड़ा ही टेढ़ा होता है। वहाँ बसने वालों की गति विधि अर्थात् उनकी लीलादि बुद्धिमानों के भी समझ में आना कठिन होता है। अब तुम इस मूर्च्छाविलास को छोड़ो" इस प्रकार सुबल के वचन को सुन कर श्रीहरि हँसते हुए कहने लगे॥ ५५॥

अहो विधाता ने मेरे प्रचुर आनन्द के लिये गुण समूह से अगाध राधारूप कोई विचित्र प्रीतिप्रद औषधी बनाई है अथवा तो सखे! यह कोई मनोहर नवीन कल्पलतिका ही सुन्दर खेल खेलती हुई क्रीड़ा कर रही है। जो अमल कोकिलों से सेवित है तथा मनोहर गति वाली

अहो राधानाम्नि श्रुतिपथमिते नैव कलया-
प्यहं कोवा किंवा क्वचन करणीयं कृतमपि ॥ ५७
मम स्वान्ते तावद् विदधति मुदं गोपवनिता
न यावद्राधेयं स्मृतिपथमिता प्राणदयिता ।
शपे तुभ्यं वृन्दाविपिनमखिलं गोसखिकुलं
विना राधां जाने विषमविषकालानलनिभम् ॥ ५८
अहो माधुर्य्यं किं त्रिजगति विचित्यैव विधिना
ध्रुवं वा राधाख्यां विदध इह मज्जीवितमिदम् ।
सखे किं वा प्रेम व्रजकुलवधूनां समुदितं
क्षितं धृत्या सद्यो विकलयति मां मोहनरुचिम् ॥५९

है । राधापक्ष में—अमल कलरवा अर्थात् कोकिल की भाँति कंठस्वर वाली है ऐसा अर्थ है ॥ ५६ ॥

मैं वन में निरन्तर मुरली के द्वारा राधा नाम का गान करता हूँ और सदा पुलकित-स्तम्भित होकर श्रीराधा का ध्यान करता हूँ । अहो राधिका नाम मेरे कानों में पड़ने पर मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ, क्या कर रहा हूँ, क्या कर गया हूँ, क्या करूँगा कुछ भी नहीं जान पाता हूँ ॥ ५७ ॥

हे सखे ! और भी सुनो, मेरे हृदय में अन्य कोई गोपवनिता तब तक आनन्द देती है कि जब तक प्राणप्रिया ये राधा मेरे स्मृतिपथ में नहीं आती है । हे सुवल ! मैं तुम्हारी शपथ खाकर कह रहा हूँ कि श्रीराधिका के बिना वृन्दावन—गोधन—सखा मण्डली सब मुझे भयंकर विषमय कालाग्नि की भाँति प्रतीत होते हैं ॥ ५८ ॥

अहो आश्चर्य्य ! क्या विधाता ने तीनों जगत् के माधुर्य्य को एकत्र सञ्चित करके मेरी जीवन स्वरूपा इस राधिका को बनाया है, अथवा तो हे सखे ! क्या ब्रजकुल रमणियों का प्रेम पृथिवी में शरीर धारण

इति प्रोच्योन्मादी विततविनयो नंदतनयो
रसास्वादी राधाकलनजनितानन्दजलधेः ।
ततो घूर्णन्नीपद्रुममवललम्बे विकलधीः
जहारायं चेतः सपदि वृषभानोः कुलमणेः ॥ ६०

गोपस्त्रीकुललम्पटोऽपि स हरिः श्रीराधिकालोकना-
दासीदुत्कलिकाकुलः पुलकितः खिन्नोऽश्रु धौताननः ।
प्रीत्या नूतनवल्लरीषु लभते तावन्मिलिन्दोः मुदं
यावत्कल्पलतागतं परिमलं विन्देत नैवामलम् ॥ ६१

विघूर्णन्तं कृष्णं रसकलिततृष्णं वत वटुः
समाकृष्योवाच स्फुटममलनर्मोन्नतिपटुः ।
सखे शंके पंकेरुहनयनकंपेन वलितो
हरे भीतो राधावलविपुलवाधासमुदयात् ॥ ६२

कर प्रकट हुआ है। जो कि परम मोहन रुचि वाले मुझे भी व्याकुल कर रहा है ॥ ५६ ॥

ऐसा कह कर राधादर्शन जनित आनन्द समुद्र के रसास्वादी, अति विनयी नन्दनन्दन भ्रमित चित्त होकर अथवा उस आनंद समुद्र में भ्रमित होते हुए व्याकुलता के साथ कदम्बवृक्ष के सहारे से विराजमान हुए । जिस से कि वृषभानुकुलमणि श्रीराधिका का चित्त हरण हो गया ॥ ६० ॥

तब गोपस्त्री कुल के लम्पट वे श्रीहरि राधिका का अवलोकन करके महान उत्कण्ठित हो गये । उनका शरीर पुलकायमान तथा खिन्न हो गया और मुखकमल पर अश्रु छा गये । कारण कि अन्य नवीन लताओं से तब तक भ्रमर का आनन्द होता है कि जब तक उज्वल कल्पलता का परिमल उसकी नासिका में नहीं प्रवेश करता है ॥ ६१ ॥

उज्वल परिहास बढ़ाने में पटु, वटु मधुमंगल, रसलोलुप भ्रमित-

ततो ज्ञातं ज्ञातं न च मुरलिकां नापि वसनं
न वा मां जानीषे सपदि परितो नो सहचरान् ।
वटुं मामालोक्य प्रवलमहसे साहसमहं
त्यजाशंकामासामभिमुखमितस्त्वं चल सखे ॥ ६३
वटोराकर्ण्येमां गिरमथ वताहोज्वल अहो
रहो लीलालीलालितमतिरमन्दस्मितमुखः ।
अयं पश्य स्वीयं तव शिरसि विन्यस्यति भयं
नहि ग्राम्यस्तक्रं पिवति पयसोष्णेन चकितः ॥ ६४
इमं पश्वाद्रद्धाखिलसवयसां भूसुरवरं
गृहं किं वा तूर्णं नय विनयशालिन्व्रजपतेः ।

चित्त श्रीकृष्ण को खींच कर कहने लगा, हे सखे ! मैंने जान लिया कि राधा के विपुल वलवाधा से अर्थात् राधा के दर्शन में जो अनन्तवाधायें उठी हैं उनके द्वारा तुम भयभीत हो गये हो । हे हरे ! तुम्हारे नयन कमल भी अत्यन्त कम्पायमान हो रहे हैं ॥ ६२ ॥

अतएव मैंने जान लिया कि न तो तुम मुरली को देख रहे हो, न गिरे हुये वसन को सम्भाल रहे हो, न चारों ओर खड़े सहचरों का ही तुमको कुछ ध्यान है । अच्छा ! जो कुछ हुआ सो हुआ । अब तो अपने को सम्हालो । प्रवल तेज वाले, महासाहसी मुझको ओर देखकर सखे ! भय छोड़ दो तथा यहाँ से उनकी ओर चलो ॥ ६३ ॥

वटु के ऐसे वचन सुन कर तब उज्ज्वल नामक सखा कहने लगा । जो कि रहस्य लीलाओं को जानने वाला और बड़ा हँस मुख था । वह बोला, हे सखे ! यह मधुमंगल अपने भय को तुम्हारे शिर पर डालना चाहता है । क्यों कि दुग्ध की उष्णता से चकित ग्राम्यजन तक्र पान नहीं करना चाहता है अर्थात् दूध का जला हुआ छाछ से भी घवड़ाता है ॥ ६४ ॥

न चेदाभ्यो भीते द्रुतमपसृते स्विन्नति मतौ
वयं सर्व्वे नूनं कथमिह दधामो हृदि धृतिम् ॥ ६५
अये ज्ञातं सत्यं यदि मदयुता गोपवनिता
वितानं निर्म्माय प्रचुरपटवासैरस्णितम् ।
नितान्तं वध्नीयुः पुनरपिवटुं गोकुलविधो
त्रिधास्यामस्तर्हि त्वयि किमु जिते भूरिविकलाः ॥ ६६
जगादायं कार्यं किमपि कजयन्कोपवलितं
कृत केनालीकं कितव तव नामोज्वल इति ।
लपन्तं कृष्णस्य प्रणयनयतो मां हितमपि
द्रुतं कुर्व्वन्नूनं सपदि मलिनोसीह कलिना ॥ ६७ ॥

हे विनयशील सखे ! इस ब्राह्मण बालक को समस्त सखाओं के पीछे रक्खो । फिर भी इससे भय बना ही रहेगा । इस लिये इस को किसी बहाने से ब्रजराज के घर पर भेज देओ । वहाँ ही रह कर यह लड्डुओं से लड़ता रहेगा । यह तो बड़ा डरपोक है । यदि यह उन गोपियों से डर कर शीघ्र ही भाग खड़ा हुआ तो उस समय हम सब किस प्रकार धैर्य्य रक्खेंगे । अर्थात् इस के संग से हम सब भी भयभीत होकर भाग सकते हैं ॥ ६५ ॥

और सखे ! एक और सत्य बात मैं यह जान गया हूँ कि यदि अभिमानिनी गोपरमणियाँ बहुत से पट्टवस्त्रों से वटु के चारों ओर जाल(घेरा)सा बना कर फिर उसको बाँध लेगीं तो हे गोकुलचन्द्र!तुम भी पराजित हो जाओगे । क्यों कि उसको उस समय छुड़ा कर नहीं ला सकोगे । और राजा के पराजय होने पर सेना रूप हम सब अत्यन्त व्याकुल होकर क्या कर सकेंगे ॥ ६६ ॥

उज्ज्वल सखा के ऐसे वचन सुन कर वह मधुमंगल महान् क्रोध करता हुआ कहने लगा— अरे कपटी ! तुम्हारा उज्ज्वल नाम किसने

कथयति वटावेवं त्वेवं व्रजेन्द्रसुताननं
मलयजरसः सान्द्रं राधाकराम्बुजगन्धितः।
विदधदमितानन्दं मन्दं पपात कुलावला-
परिषदि दधौ श्रुत्योर्मोदं हरेर्नवकाकली ॥ ६८

इति श्रीमधुकेलिवल्ल्यां गोविन्दजयोद्यमो
नाम द्वितीयः पल्लवः ॥ २ ॥

———

अथ व्रजेन्द्रात्मजवंचनाय राधा पृथग्भूय निजालिवर्गात्।
विचिन्वती पुष्पचयं प्रमोदमातन्वती सा शुशुभे सखीनाम् ॥ १
निरीक्ष्यमाणा नयनाञ्चलेन संवीजितात्या नलिनीदलेन।
छत्रेण मूर्द्धोपरिभूरिराजिता जहार चित्तं रसिकेन्द्रमौलेः ॥ २

रक्खा है तुम तो कलह करने से मलिन हो गये हो। मैं कृष्ण को परम हितकारी मित्र हूँ। मुझे भगाना चाँहते हो॥ ६७ ॥

इधर वटु ऐसा ही कह रहा था कि उधर राधा-करकमल के गन्ध को प्राप्त गाढ़ मनोहर चन्दनरस श्रीकृष्ण के मुख पर पड़ने लगा। अर्थात् राधिका ने अपने हाथों में चन्दनरस लेकर श्रीहरि के मुख के ऊपर फेंका। उस समय सखी-समाज में प्रचुर आनन्द का उदय होने लगा। उधर श्रीहरि की नववेणुध्वनि कर्णों के आनन्द को बढ़ाने लगी ॥ ६८ ॥

———

तब राधा निजसखी समाज से पृथक होकर अन्यत्र पुष्पचयन करती हुई और सखियों को आनन्द देती हुई शोभायमाना होने लगीं। श्रीकृष्ण से छिपने के लिये ही आपने ऐसा किया ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण अपने नेत्रों की कोर से जिनका दर्शन कर रहे हैं, सखियाँ

राधां स वीक्ष्यामितहर्षतन्त्रः करोल्लसत्काञ्चनरत्नयन्त्रः ॥
विज्ञाय वृन्दागिरि दत्तकर्णा चिक्षेप धारामसितात्मवर्णाम् ॥ ३
धारां दधारात्मकरेण सावला श्यामाम्बुसिक्तामलगण्डमण्डला ।
लेभे च मोदं प्रियसंगजातं तनौ ततस्तंच विकारजातम् ॥ ४
प्रियाननाम्भोजमधून्मदालि र्वलानुजः पालितधैर्य्यपालिः ।
जगाद वादामृतपानलोभी मृषारुषाहासविलासशोभी ॥ ५
अयेऽनयं नातनुताविनीतामत्तो न मत्ता भवतापि भीताः ।
ऊनप्रसूनच्छविदर्पवत्यः कुर्व्वन्ति वृन्दाविपिनं भवत्यः ॥६

कमलदलों से जिनको बीजन कर रही हैं, जिनका मस्तक के ऊपर छत्र रक्खा गया है ऐसी जो श्रीराधका हैं उन्होंने रसिकेन्द्रमौलि श्रीहरि के चित्त को हरण कर लिया ॥ २ ॥

वे श्रीहरि राधा को देख अत्यन्त हर्षित हो हाथ में कञ्चन रत्न की पिचकारी लेकर बृन्दा के वचनों के प्रति कान रख कर अपने वर्ण की भाँति श्याम जलधारा छोड़ने लगे ॥ ३ ॥

उस समय वह अबला राधा श्याम-जलधाराओं से भीग गईं तथा उनके गण्डमण्डल परमशोभा को प्राप्त हो गये । आपने अपने हाथों से धाराओं को रोका तथा मनमें प्रियसंग से उत्पन्न परम आनन्द को प्राप्त हुईं और तन पर प्रेम विकार को प्राप्त हुईं ॥ ४ ॥

प्रिया के मुख कमल के मधुपान से उन्मत्त और विवादामृत पान करने में अत्यन्त लुब्ध तथा हास्य विलास से शोभायमान वलानुज श्रीहरि धीरभाव से मिथ्यारोष प्रकट करते हुए कहने लगे ॥ ५ ॥

अजी ! अन्याय मत करो । हम से भयभीत होकर भी उन्मत्त हो कर गर्व्विनी हो रही हो । मेरे वृन्दावन के पुष्पादिकों की शोभा को प्राप्त होकर ही आप सब इस प्रकार गर्व्ववती हैं ॥ ६ ॥

अहो वृन्दारण्यं रुचिरतरवल्लीतरुचितं
यदीयं सा राधा जयति रमणीमण्डनमणिः ।
द्रुतं तावद्गच्छ व्रजवरवधूटीविटनट
स्फुटं यावन्नाट्यं प्रकटयति वाचो न ललिता ॥ ७
गच्छामि कुत्रातनुपूरिताशे मासे परे वर्षकृताभिलाषे ।
कुर्वे यथेच्छं विजिताभिशापः शपाथ वाद्यालपनष्टतापः ॥ ८
न जानीषे किं नो मिहिरवरपूजाविधिरता
विनीता विख्याताः सततमवदाता मदयुताः ।
अमादत्रान्यासां न कुरु चलवाक् चित्ररचनां
वनान्ते विज्ञातं कितव ! तव चातुर्यमखिलम् ॥ ९

तब गोपियाँ कहने लगीं-अहो अति मनोहर लतावेली से शोभित बृन्दावन जिन राधिका का है वे रमणीभूषणमणि श्रीराधा जय को प्राप्त हो रहीं हैं। हे व्रजवधूओं के विट ! हे नट ! शीघ्र ही यहाँ से चले जाओ। जब तक ललिता अपने वचनों को नहीं नचाती है अर्थात् ललिता के बोलने के पहले से तुम चले जाओ। नहीं तो उनसे तिरस्कृत हो जाओगे ॥ ७ ॥

तब श्रीहरि ने कहा—हम कहाँ जायें। यह होली का समय है, उत्तम मास है, जो एक वर्ष के बाद आता है, इसमें काम की आशाऐं पूर्ण हो जाती हैं। हम तो यथेच्छा आचरण करेंगे। इसमें अभिशाप भी नहीं लगता है अर्थात् गालियाँ नहीं लगती हैं। तुम सब स्राप भले ही दो परन्तु वह सब वृथा हो जायगा। तुम्हारे प्रलाप को कौन सुनेगा। हम तो इस समय निर्भय हैं। हमें गुरुजनों से कोई भय नहीं है ॥ ८ ॥

तब गोपियाँ कहने लगीं, क्या तुम नहीं जानते हो कि हम सब सूर्य्यदेव की उत्तम पूजाविधि में लगी हुई हैं। अतएव विनयशीला तथा जगविख्याता हो रही हैं। हम सबके शरीर महान् पवित्र है।

वाम्यं जहातु भवती न जहातु कामं
निःशंकमेव करवै निजमद्य कामम् ।
का मंदमानमनुगच्छति वा न कामं
कामं दधीरिह रसे न भ्रियान्निकामम् ॥ १०
इति संलपतोस्तदा तयो र्ललितप्रेमरसावदातयोः ।
ललिता प्रिययोः स्मिताधिका भ्रुकुटीभंगमधत्त राधिका ॥ ११
श्यामाथ मूकीकृतरत्ननूपुरा लीलावली लास्यविधानवन्धुरा ।
आकृष्य तुर्णं गिरिधारिणो भुजां लिलेप काश्मीररसै र्मुखाम्बुजम् ॥१२

इसी कारण हम सब परम गर्व्वित हो रही हैं । हे चञ्चल ! यहाँ अपनी बाणी को मत चलाओ ! भूल से भी औरों के सामने अपनी प्रशंसा मत करो । हे कपटी ! बन के बीच हमने तुम्हारी समस्त वल-चतुराई देख ली ॥ ९ ॥

तब श्रीहरि कहने लगे, आप कुटिलता को छोड़ दीजिये, परन्तु काम मत छोड़िये । हम तो निःशंक होकर आज अपने अभिलाष पूर्ण करेंगे । कौन रमणी मन्द मान को चाहती है अर्थात् आज मान करना अनुचित है । कौन रमणी काम को नहीं चाहती है अर्थात् सब कोई काम को चाहती हैं । क्योंकि इस समय सबका काम उदय होता है । शुद्धबुद्धि वाली ऐसी कौन है जो कि इस होली-रस में काम को यथेच्छ रूप में नहीं धारण करती हैं ? ॥ १० ॥

उन दोनों का इस प्रकार संलाप होने लगा । दोनों मनोहर प्रेमरस के शुद्ध स्वरूप थे । उस समय राधिका मन्दहास्य करती हुईं भ्रकुटी भंग करने लगीं ॥ ११ ॥

तब मन्दचाल से अपने रत्ननूपुरों को मूक करती हुई नृत्य करने में परम मनोहरा श्यामा ने गिरिधारि की भुजा को खींच कर केशर-कुंकुम के रस से उनके मुखाम्बुज का लेपन किया ॥ १२ ॥

राधा क्वणत्कंकणकिंकिणीकं मदोल्लसच्चंचलचञ्चरीकम् ।
गण्डस्थले नन्दसुतस्य कन्दुकं चिक्षेप वेगोन्नतकंचुकांशुकम् ॥१३

विहाय दन्तीन्द्रगतिर्विचारं हासश्रियापास्तशशांकसारम् ।
बलानुजोऽतो वृषभानुजाननं निनाय तत्कुंकुमपंकमाननम् ॥१४

बद्धाञ्जलिः प्राह ततोऽतिदीनः कृष्णो रसज्ञो दयितां प्रवीणः ।
जलं विना जीवति नैव मीनः प्रिये सदाहन्त भवाम्यधीनः ॥१५

धार्ष्टयं कृतं तन्न ममेह दोषः स्वकारि मासेन विचारमोषः ।
निःसारणीयो मनसोऽद्य रोषः संमाननीयः सुमुखि! प्रतोषः ॥१६

जानामि जानामि कृतं सुचाटु नामुनाधुना पाहि हरे न साधुना ।
इतीवरोषेण निजाधिदैवतं जघान लीलाकमलेन सैव तम् ॥१७

राधा ने नन्दनन्दन के गण्डस्थल पर वेग के साथ रंग के गेंद फेंका । उस समय उनके कंकण-किंकिणि बजने लगे तथा उनकी चोली के वस्त्र खिंच गये । भ्रमरगण मदोल्लास से चञ्चल होकर घूमने लगे ॥ १३ ॥

उस समय गजराज की चाल वाले बलभैया कृष्ण ने विचार को छोड़ कर अपने हास्य की शोभा से चन्द्रमा को तिरस्कृत करते हुए शीघ्रता से कुंकुम पंक के द्वारा वृषभानुनन्दिनी के मुख का लेपन कर दिया ॥ १४ ॥

अनन्तर प्रवीण, रसज्ञ श्रीकृष्ण हाथ जोड़ कर अत्यन्त दीनता के साथ राधिका को कहने लगे "हे प्रिये ! जल के बिना मीन नहीं जीता है । मैं तो सर्व्वदा आपके आधीन हूँ ॥ १५ ॥

मैंने जो धृष्टता की है उसमें मेरा कोई दोष नहीं है । इस महीने में विचार रहता नहीं है । अतएव आज मन से क्रोध भूल जाइये । हे सुमुखि ! तुम्हारे मुखचन्द्र पर क्रोध के चिन्ह उचित नहीं है ॥ १६ ॥

तब श्रीराधा "हे हरे ! मैं जानती हूँ, तुम्हारी करतूत को जानती

वृन्दाह वर्यो युवयोरयं नयो जयोचितः सुन्दरिभावनुन्नयोः ।
नेत्रे हरेः खञ्जनगर्वमोचने त्वं कज्जलेनाञ्जय कंजलोचने ।।१८

स्मित्वांगुली शिखर-संचितकज्जलेयं
संगोप्य कम्पमपि संप्रति नापनेयम् ।
हस्तं निधाय दयितांसतटे विहस्तं
व्यानंज कंजनयने दयिताऽसमस्तम् ।।१९

तयोर्मिथः स्पर्शविलासजातं भावोन्नतं हर्षविकारजातम् ।
वीक्ष्यामितानन्तरङ्गसंकुलं चित्रायितं तत्र वभौ सखीकुलम् ।।२०
तस्मिन्समाजे प्रमदालिसंगते चतुर्विधे वाद्यचये लयं गते ।
काश्चिन्ननर्त्तुः पुरतस्तदा तयो रुन्मादघूर्णा प्रतिभाविघातयोः।।२१

हूँ, अब तो मीठी मीठी बातें बनाते हुए बड़े साधु बन गये हो । जाओ जाओ" ऐसा कहती हुई अत्यन्त रिस करके निज अधिदेव श्रीहरि पर लीलाकमल का प्रहार करने लगीं ।। १७ ।।

उस समय वृन्दा ने कहा हे सुन्दरि ! हे कमलनयनी ! भाव परायण आप दोनों की यह नीति जय के योग्य ही है । अब तो हरि के खञ्जन गर्वहारी नेत्रों को काजल से रञ्जित करो ॥ १८

प्राणप्रियतमा राधिका ने हँस कर अपनी एक अंगुली में काजल लेकर अपने न रुकने वाले कम्प को दबा कर अचानक अपना दूसरा हाथ प्राणप्यारे के कंधे पर रख कर उनके कमलनेत्रों में काजल आँज दिया ।। १९ ।।

उस समय सखीसमाज उनके परस्पर के स्पर्श विलास से उत्पन्न हर्ष विकार पूर्ण उन्नत भाव के दर्शन करके अपार आनन्द सागर में डूबती हुई चित्र की भाँति विराजमान हुई ॥२०॥

अत्यन्त हर्षवती गोपियों के उस समाज में चारों प्रकार के वाद्य लय को प्राप्त हो गये । कोई-कोई रमणियाँ उन दोनों के सामने नाँचने लगीं । उन्माद घूर्णा से दोनों पीड़ित हो गये ॥ २१ ॥

मिथः क्षिपन्तौ सुमनः परागं समीरयन्तौ सलिलं सरागम् ।
तौ मादनोल्लासविलासकंदरौ राधामुकुन्दौ नटतःस्म सुन्दरौ ॥२२
तौ धूनयन्तौ कलकंठमानं गानं दधानौ मधुरं समानम् ।
भानंदिमंदीकृतहंसयानं तेनात आनन्द वितानतानम् ॥ २३
पद्मै मृणालैरथ कन्दुकैः कलिस्तयोः क्वणन्मंजुलकंकणावलिः ।
मन्दस्मितोद्यन्भ्रूकुटिश्चलाधरः सुखं सखीनामतनोत्कलाधरः॥ २४
ततो व्रजेन्दात्मजदर्शनोत्सुका नानांशुका मंजुलमण्डनांशुकाः ।
ते वल्लवा गोपनितस्विनीचयं सारावमावव्रुरतीव निर्भयम् ॥ २५
भण्डायिताः केचन गानमानना रामायिताः केचन चानताननाः ।
विस्रस्तकेशा धृतयोगिवेशाः केऽप्यागता भस्मचितांगतां गताः॥२६

उस समय उन्मत्तकारी उल्लासमय विलास परायण राधामुकुन्द परस्पर के प्रति पुष्पपराग को उड़ाते हुए तथा प्रेमपूर्वक जल छिड़कते हुए सुन्दर नृत्य करने लगे ॥ २२ ॥

दोनों ने समान भाव से कोकिल के गर्व को तिरस्कृत करने वाले मधुरकंठ से गान किया । जिसको सुनकर भानुनन्दिनी यमुना के हंस अपनी गति को भूल गये अथवा हंसयान ब्रह्मा भी परम विस्मयान्वित हो गये और उस समय बड़ी भारी आनन्द की वर्षा होने लगी ॥२३

तब तो पद्म-मृणाल और कन्दुकादि द्रव्यों से दोनों का केलिकलह होने लगा । जिससे मनोहर कंकणावली बजने लगी । तब मन्दहास्य सहित भ्रूकुटि उठाकर अधर कँपाते हुए कलाधर श्रीकृष्ण ने सखियों को महान आनन्दित किया ॥ २४ ॥

तब व्रजेन्द्रनन्दन के दर्शन के लिये उत्कण्ठित, मनोहर नाना वस्त्र भूषणों से शोभायमान उन सब गोपों ने अत्यन्त निर्भयता के साथ शब्द करते हुए उन गोपांगनाओं को घेर लिया ॥ २५ ॥

कोई गाते हुए भाँड़ का आचरण करने लगे, कोई नीचे को मुख

जगुः कलं केचन कृष्णमानसाः
नन्नर्तुरेके वकवैरिलालसाः ।
कञ्जैर्मिथः केचन कंदुकैः कलिं
चक्रुर्दधानाः परितो मुदावलिम् ॥ २७

पिष्टातपुंजैः बिततं वितेनिरे
वितानमुच्चैः कतिचित्समेजिरे ।
हो हो रवास्याः कतिचिद्विरेजिरे
वाद्यानि केचिद्विविधानि भेजिरे ॥ २८

तदा तु राधेंगितकोविदाः सदा
मुदावदाताः सहचर्य उन्मदाः ।
कराब्जराजत्शरचापयष्टिकाः
पुरोऽवतस्थुः कनकाङ्गयष्टिका ॥ २९

कर स्त्री बनने लगे, कोई शरीर में भस्म लगाकर तथा केशों को खोल कर योगी बन कर आने लगे॥ २६ ॥

कोई श्रीहरि में मन लगाकर मनोहर गान करने लगे। कोई वका-सुर के वैरी कृष्ण की लालसा से उन्मत्त होकर नाचने लगे। कोई कमलों से, कोई गेंदों से परस्पर लड़ते हुए वे सब प्रकार से महान आनन्द को देने लगें ॥ २७ ॥

कोई पट्टवस्त्रों से अपने को ढकने लगे, कोई पाटाम्बरों से चँदोआ तनाने लगे, कोई "हो हो" इस प्रकार मुख से बोलने लगे और कोई विविध वाद्यों को बजाने लगे ॥ २८ ॥

उस समय राधा की इंगित को जानने में परम पण्डिता, सर्ब्बदा पवित्र शरीर वाली, रस उन्मादिनी सहचरियाँ हाथ में धनुष-वाण और छड़ी लेकर सामने आ खड़ी हो गयीं। उनके अङ्ग भी सोने की छड़ी की भाँति शोभा दे रहे थे ॥ २९ ॥

नालीकनाली मृदुकंदुकाली सरोजपाली विलसत्कराम्बुजाः।
बलानुजाभीष्टदकल्पवल्ल्योगान्धर्व्विकाल्योबभुरम्बुजाद्यः ।।३०
मिथः प्रीतिस्पर्द्धावलयुगलगामंजुलजना
स्तदा गंधाधाराः सपदि जलधारा बहुविधाः।
मुहु र्वर्षन्तोऽमी ललिततनुसंलग्नवसना
मुदा वृन्दारण्यं प्रसृत-नववन्यं विदधिरे ।। ३१
परीतं प्रीत्यन्धैः परिपरिजनैः प्राणसुहृदो
र्मिथो मन्दंमन्दं मदरणितमंजीरमहितम्।
कलंकूजत्कोकावलिकलकलं कुंजकलितं
बभौ वृन्दारण्यं व्रततिवरवृन्दैर्वलयितम् ।। ३२
ततः प्रादुर्भूतं कुसुमरजसामन्धतमसं
रसानन्दं नन्दात्मजमनसि तेनेऽति निविडम्।

कमलनयनी,बलभैया कृष्ण के अभीष्टदान में कल्पलता स्वरूपिणी, गान्धर्व्विका श्रीराधा की सखियाँ हाथ में कमलनाल, कोमलगेंद तथा कमलादि को ले लेकर वहाँ आ उपस्थित हुईं ।। ३० ।।

प्रीति में परस्पर स्पर्द्धा रखने वाली, युगल की अनुगामिनी, मनोहर सखियाँ उस समय नाना सुगन्धि के आधार नाना प्रकार की जलधाराओं को बारम्बार बरसाने लगीं। उनके मनोहर शरीर में भीने वस्त्र चिपक गये थे। उन्होंने उस समय रंग जल की वर्षा से वृन्दावन में बाढ़ ला दी ।। ३१ ।।

उस समय श्रीवृन्दावन प्राणप्रिय युगल की प्रीति में अन्ध श्रेष्ठ परिजनों द्वारा परिपूर्ण छा गया तथा मन्द मन्द बजने वाले मंजीरों की ध्वनि से गूँज उठा और लता-वेलिवृक्षों से युक्त श्रीवृन्दावन के कुंज कुंज मधुरशब्द करने वाले चक्रवाक की कलकल कूजन से भर गया ।। ३२ ।।

तदनन्तर कुसुम रज के उड़ाने से जो घोर अन्धकार छाया उससे

हरिर्विभ्राणोऽसावहमहमिका संभृतमहं
द्रुतं यस्मिन्नेवाकुरुत निभृतं केलिकलहम् ॥ ३३
मुदा संभूयामूः सपदि सहचर्य्यस्तत इतो
महान्धाः श्रीकृष्णं सहचरयुतं हन्त रुरुधुः ।
समन्तादाजघ्नुः कुसुमलकुटीभिः कुतुकत-
स्ततो दुद्रावासौ व्रजपतिसुतो मित्रवलितः ॥ ३४
विशाखा-चित्रादि प्रियसवयसां वापि वयसां
रवो राधाराधा जयति जयतीत्याविरभवत् ।
वने राज्यं तस्या सपदि सविलासं विशदयत्
कराभ्यां यं श्रुत्वाऽरुणादियमहो कर्णयुगलम् ॥३५
श्रियं जातां कांचिन्निजवदनपंकेरुहगतां
परावृत्योत्कण्ठं सपदि कलयन्तं कुतुकतः ।
मुदा पश्यन्तीयं दयितममितानन्दवलिता
तदा राधालोनामतनुत विलासं स्मितमुखी ॥ ३६

नन्दनन्दन के मन में गाढ़ रसानन्द उत्पन्न हुआ और ये श्रीहरि "हमारी जय है, हमारी जय है" हम पहले, हम पहले" कहते हुए अत्यन्त केलिकलह मचाने लगे ॥ ३३ ॥

उस समय महा आनन्द के साथ राधिका की सहचरियों ने सह-चरों के साथ श्रीकृष्ण को तुरन्त ही चारों ओर से घेर लिया तथा कौतुकवश फुल—छड़ियों से उन्हें पीटने लगीं । तब तो व्रजराजनन्दन मित्रों के साथ वहाँ से भाग खड़े हुये ॥ ३४ ॥

उस समय विशाखा-चित्रादि प्रियसखियों के अथवा तो पक्षियों के "राधा की जय हुई, राधा की जय हुई" "जय राधे, जय राधे" ऐसे ऐसे मधुर शब्द प्रकट हुये । वे सब "वृन्दावन में राधिका-महारानी का सविलास अधिकार है" ऐसा घोषित करने लगीं । उनके ऐसे शब्दों को सुनकर राधिका ने हाथों से दोनों कर्ण को मूँद लिया ॥ ३५ ॥

हरि र्गत्वा दूरं हसितसितमाम्नातत्रदना-
मलाम्भोज: प्रेयस्यतुलतरभावाहृतमना: ।
निकुञ्जेऽयं नानाविधकुसुमपुंजे विलसितुं
जगाद व्याजेन व्रजविपिनचन्द्रोऽखिलसखीन् ॥ ३७
शृणुध्वं गोसंख्या मुखमभिमुखं व: कलयितुं
न शक्नोमि व्रीडासरिति परितो मज्जितमना: ।
परं ब्रह्मालंव्यावनतनयन: पद्मवदना:
करिष्येहं यात स्वभवनमिदानीं सुभत्रिका: ॥ ३८

उस समय स्मितमुखी राधिका ने अपार आनन्द के साथ अपने वदन कमल गत किसी मनोहर शोभा को कौतूहल पूर्वक उत्कण्ठा के साथ मुड़ मुड़ कर देखने वाले प्रिय श्रीहरि के प्रति आनन्द सहित देखती हुई सखियों की उत्कण्ठा को बढ़ाया ॥ ३६ ॥

उज्ज्वल हास्य से शोभित वदन कमल वाले, प्रेयसी के अतुलनीय भाव के द्वारा मुग्ध ने वृन्दाबनचन्द्र श्रीहरि दूर जाकर नाना प्रकार के पुष्प पुंज से शोभित निकुंज में विलास करने के लिये छल पूर्वक अपने सखाओं से कहने लगे ॥ ३७ ॥

हे गोपो ! सुनो ! तुम सब के सामने में इन गोपियों का मुख नहीं देख सकता हूँ । क्यों कि मेरा मन लज्जानदी में डूब रहा है । अतः अपने अपने घर को जाओ । कल फिर क्रीड़ा करेंगे । जो यदि यह कहो कि हम सब चले जाने पर तुम्हें और अधिक लज्जा हो सकती है, तो सुनो । मैं परब्रह्म का ध्यान कर अवनत नयन से उन पद्मवदनाओं को भव्यमयी करूँगा । तात्पर्य्य यह है कि अपने नेत्र मधुप दोनों से उनके मुख कमल के माधुर्य्य मधु का पान करूँगा । तुम लोगों के रहने से मेरी समाधि भंग हो सकती है, अतएव तुम सब घर जाओ । मैं जब एकान्त में नीचे मुख करके बैठ जाऊँगा तो उस समय गोपां-

निगद्यै वं राधाविलसित सतृष्णः सखिचयं
प्रहित्य श्रीकृष्णः प्रणयभरभुग्नः ससुवलः ।
निकुञ्जे पुष्पालीरतमधुपपुंजे विरचयन्
वरं तल्पं मेने निमिषमपि कल्पं रसनिधिः ॥ ३९

इति श्रीमधुकेलिवल्यां गोविन्दनिर्जयो
नाम तृतीयः पल्लवः ॥ ३ ॥

श्रीराधिका प्रेमभराधिकाधिकाऽधिकायमुद्भूतविकारसंकुला ।
प्रियावलोकामललालसाकुला कुलावलामौलिरुवाच साऽलिकाम् ॥१
विशाखिके गोकुलराजनन्दनः केलीलसत्कुंकुमपंकचन्दनः ।
परागराजीरुचिराननः कथं समेति हा हन्त ममाद्य दृक्पथम् ॥ २

गनाऐं आकर मुझे घेर कर खड़ी हो जायँगी और तब मैं उनके मुख को देखूँगा ॥ २८ ॥

राधा के साथ विलास करने के लिये तृष्णावान रसनिधि श्रीकृष्ण सखाओं को इस प्रकार कह कर तथा उनको अपने अपने घरों में भेज कर प्रणय मत्तता के साथ सुवल के साथ भ्रमरों से युक्त पुष्पों से विभूषित निकुंज में मनोहर शय्या की रचना करने लगे। उस समय उनके लिये निमिषमात्र समय भी कल्प की भाँति प्रतीत होने लगा ॥ २९ ॥

उधर प्रेमातिशयता से अधिक पीड़िता, अद्भुत विकारों से व्याप्त देहवाली, प्रिय अवलोकन के लिये तीव्र लालसाओं से व्याकुला, कुलांगनामौलि श्रीराधिका निजसखी विशाखा के प्रति कहते लगीं ॥ १ ॥

हे विशाखिके ! केलिरस में कुंकुमपंक-चन्दनधारी, पराग समूह से मनोहर वदन वाले, गोकुलेन्द्रनन्दन श्रीहरि आज हाय ! हमारे नयनमार्ग में किस प्रकार से आयेंगे ? ॥ २ ॥

चन्द्रावली चतुरिकालिचयैश्चलः किं
केलिं कटाक्षविशिखै वितनोति विद्धः।
किम्बा सखि स्वजयलज्जित मित्रमानी
मानी ममाद्य दयितः सदनं प्रपेदे ॥ ३
हा हन्त किं नु कुसुमासव-कौतुकेन
वद्धो हरिः कलयतीह वयस्यलीलाम्।
आहो निकुंजकुहरे निभृतं कयापि
जुष्टो व्रजेन्द्रतनयस्तनुते विलासम् ॥ ४
कुर्वन्कामकलाः कलाकलितधीः केलीकलौ कौतुकी
क्लेशघ्नः कलकंकणाक्वणितकृत्कान्ताकराकर्षकः।
कालिन्दीकलकूलकुञ्जकुहरक्रीडोत्करो कुण्ठतः
कृष्णः कं करुणः करिष्यति कदा कूजन्क्वचित्कोकिलैः॥५

क्या वे चन्द्रावली की पद्मादि चतुर सखियों के कटाक्षशरों से विद्ध होकर क्रीड़ा कर रहे हैं ? अथवा तो हे सखि ! अपने पराजय से लज्जित मित्र के अभिमान से मानी होकर प्राणवल्लभ आज अपने घर को चले गये हैं ? ॥ ३ ॥

हाय हाय ! क्या मधुमंगल के कौतुक के वश में होकर श्रीहरि सख्यलीला का विस्तार कर रहे हैं ? अथवा वे नन्दनन्दन किसी रमणी से युक्त होकर निकुंजान्तर में विलास करने लगे हैं ? ॥ ४ ॥

कामकला को प्रकट करते हुए, कला में आसक्त मतिवाले, क्रीड़ा कलह में कौतुकी, क्लेशनाशकारी, कलकंकण बजाने वाले, कान्ता के करों के आकर्षक, शब्दायमान कालिन्दी के कूल पर कुंज कुहर में उत्कट क्रीड़ाकारी, कुण्ठित हृदय वाले, करुणामय श्रीकृष्ण अथवा जो कब कोकिल की भाँति शब्द करते हुए सुख प्रदान रूप करुणा करेंगे ? ॥ ५ ॥

इदं वृन्दारण्यं विषमविषवद्भाति सततं
सुता भानोरेषा हृदयमदयं मे ज्वलयति ।
इमे कुंजाश्चित्रं विदधति परामार्त्तिविततिं
किमीहे हा हन्त प्रिय सखि न शिक्षां प्रणयसि ॥ ६

वचनमवकलय्य राधिकाया नवनवमाधवरंगसाधिकायाः ।
अतुलयुगलकेलिजीवनाली सपदि चचाल सुचारुचञ्चलाक्षी ॥७

तदैव कृष्णप्रहितो हितो हरे र्हर्षप्लुतस्तां सुबलो ददर्श ।
उवाच चाहो वद यासि कुत्र मित्रं विशाखे मम जीवय त्वम् ॥८

क्वचित्कुंजद्वारि व्रजपतिसुतस्तिष्ठति रतः
कदाप्यन्तः खिन्नो विकिरति हरिः श्वासनिकरम् ।
क्वचिद् हाहारावं सुमुखि तनुतेयं क्वचिदपि
प्रियां मत्वा कृष्णोऽभिसरति मुदा चम्पकलताम् ॥ ९

हाय ! प्राणबल्लभ के बिना यह वृन्दावन मेरे लिये निरन्तर विषम विष की भाँति प्रतीत हो रहा है। परम शीतला यह सूर्य्यतनया यमुना निर्दयता के साथ मेरे हृदय को जला रही है । ये सब कुन्ज परम व्याकुलता को बढ़ा रहे हैं। मैं क्या करूँ, हाय हाय प्रियसखि ! मेरी शिक्षा को क्यों नहीं मान रही हो ? ॥ ६ ॥

माधव के साथ नब नब कौतुक साधन कारिणी राधिका के ऐसे वचनों को सुन कर अतुलनीय युगलकेलि को ही अपना जीवन समझने वाली, मनोहर चञ्चलाक्षी विशाखा उसी समय श्रीहरि के पास चलने लगी ॥ ७ ॥

उस समय श्रीकृष्ण के भेजे हुये उनके हितकारी हर्षोत्फुल्ल सुवल विशाखा को देख कर कहने लगा। "अहो विशाखे ! कहो तुम कहाँ जा रही हो ?। तुम हमारे मित्र को जीवित कराओ ॥ ८ ॥

वे व्रजराजनन्दन कभी तो कुंजद्वार पर आ खड़े होते हैं तो कभी श्रीहरि अन्तर में खिन्न होकर दीर्घ श्वासों को त्याग करते हैं। कभी

क्वचिद्राधाविष्टो भ्रमति दयितः कुंजसदने
क्वचिद् जानुद्वद्वान्तरनिहित शीर्षोपविशति ।
निनादं हंसानां क्वचिदपि निशम्याकुलमति
स्तुलाकोटिक्वाणभ्रमत इह पश्यत्यनुदिशम् ॥ १०

सुवलवचश्चकिता विशाखिकाऽसौ
तरलमतिद्रुतमागता निकुंजे ।
अतुलितदयिता वियोग-बाधं
ब्रजपतिनन्दनमातुरं ददर्श ॥ ११

दृष्ट्वा दशामाकुलमानसां निजां
तूष्णीं स्थितां धीरतया विशाखिकाम् ।
विलोक्य गोपेन्द्रसुतः पुरो मुदा
जगाद साश्रुः पुलकावलीवरी ॥ १२

चे "हा हा" शब्द करने लगते हैं । हे सुमुखि! कभी वे श्रीकृष्ण चम्पक की लता को ही राधा समझ कर उसकी ओर आनन्द से गमन करते हैं ॥ ९ ॥

वे कभी राधा के आवेश में प्रिय कुंजसदन में भ्रमण करते हैं, तो कभी दोनों जंघों के बीच मस्तक को रख कर बैठ जाते हैं और कभी हंसों का शब्द सुनकर ब्याकुलचित्त होकर नूपुर शब्द के भ्रम से उसके ओर बार बार देखने लगते हैं । उनकी ऐसी दशा हो रही है ॥ १० ॥

सुवल के बचनों से चकित और चंचल होकर वह विशाखा उस समय निकुंज में आ गयी। आपने अतुलनीय प्रिया के वियोग बाधा से आतुर व्रजराजनन्दन को देखा ॥ ११ ॥

उस समय विशाखा ब्याकुलमना श्रीकृष्ण की दशा को देख कर धीरज धर कर चुपचाप रही । उसको सामने देखकर गोपेन्द्रनन्दन

तथ्यं विशाखे वद कुत्र राधा जानामि नाहं हससीह किं माम् ।
हासे फलं किं वहुवल्लभस्य तयामलं कुञ्जमलं कुरु द्रुतम् ॥ १३
चर्य्या वर्या राधया कास्तिधुर्य्या तुल्या कुल्या गोकुले गोपवाला ।
प्रज्ञाविज्ञानाभिमानावमानी कस्मादस्माकं सखीं कांक्षसि त्वं ।१४
भूयो ब्रूयामासतीनां धुरीणां राधां जाने धर्म्मनीतिप्रवीणाम् ।
कीर्त्ती सूरोपासिनीनामहीनामासांलीनामुद्यतः किं विधातुम ॥ १५

आनन्द के साथ नेत्रों में आँसू भर कर तथा पुलकित होकर कहने लगे ॥ १२ ॥

हे विशाखे ! सत्य तो कहो। राधिका कहाँ है ? विशाखा ने कहा— मैं नहीं जानती हूँ। श्रीहरि ने कहा—तुम अवश्य जानती हो, नहीं तो यहाँ मुझे देख कर क्यों हँसती। विशाखा ने कहा "हँसने में क्या फल मिलेगा, तुम तो वहुवल्लभ हो"।

श्रीकृष्ण ने कहा- "नहीं नहीं ऐसा नहीं है। मैं तो राधिका के बिना कुछ नहीं जानता हूँ। अतः उसके साथ शीघ्र ही इस पवित्र कुंज को अलङ्कृत कर दो" ॥ १३ ॥

विशाखा परिहास करती हुई मिथ्यारोष के साथ श्रीकृष्ण को कहने लगी "श्रेष्ठ आचरण कारिणी श्रीराधिका के साथ इस गोकुल में अन्य कौन गोपांगना तुलना प्राप्त कर सकती है अर्थात् कोई नहीं कर सकती। राधा की भाँति उत्तम कुलाङ्गना और कौन है अर्थात् कोई नहीं है। अन्य गोपांगनाएं राधा से न तो उत्तम ही हैं न उसके समान ही हैं। श्रीराधिका सर्वज्ञा है और तुम केवल मैं विज्ञ हूँ ऐसा अभिमान मात्र ही रखने वाले हो। वस्तुतः तुम कुछ नहीं जानते हो। अतएव तुम किस कारण से हमारी सखी राधिका की चाहना करते हो ? ॥ १४ ॥

मैं फिर भी वार वार कहती हूँ कि सतियों में शिरोमणि श्रीराधिका धर्म्मनीति में महान् प्रवीण हैं। उनकी महान् कीर्त्ति है। सूर्य्यदेवता की उपासना से वह उत्तमा हैं। तुम उनको अपने में लीन

मृषारुषालीवचसाकुलो हरि र्दीनाननस्तं सुवलं जगाद ।
सखे नखेंदून् वृषभानुजाया दृष्ट्वागतस्त्वं नहि वा मृगाद्याः ॥१६

जाने प्रिया न कलिता ललिता वयस्या
यस्या मनो विधृतमप्यतनुप्रसादम् ।
अस्मिन्व्रजेन्द्रतनये विनयेन पूर्णे
तूर्णं तनोति नितरां चटुचारुघूर्णे ॥ १७

या पुण्य-कारुण्यभरो वराणां गोपाङ्गनानां निपुणा गुणाढ्या ।
मज्जीवनायानुदिनं दिनेन्द्रसेवामिषात्स्वां सरसीमुपैति ॥ १८

करने के लिये अर्थात् आत्मसात् करने के लिये क्यों उद्यत हो रहे हो ॥ १५ ॥

मिथ्यारोष दिखलाने वाली सखी के वचन को सुन कर श्रीहरि व्याकुल हो गये। उनका मुख मलिन हो गया । वे सुवल से कहने लगे—हे सखे ! क्या तुम मृगनयनी वृषभानुनन्दिनी के नखचन्द्रों को देख कर आये हो या नहीं ? ॥ १६ ॥

जिसका मन इस विनयपूर्ण मनोहर चंचलता से भ्रमित व्रजेन्द्र-नन्दन में आसक्त हो रहा है, ललिता की उस सखी मेरी प्रिया का दर्शन तुम ने नहीं किया। यह मधुमंगल के प्रसाद से अर्थात् मधुमंगल को उनने जो कृपा की उससे मैं जान गया। अथवा तो जिसका मन कामरूप प्रसाद का विस्तार कर रहा है और मुझ में आसक्त हो रहा है उसका तुमने दर्शन नहीं किया ॥ १७ ॥

जो मनोहर करुणामयी श्रेष्ठ गोपांगनाओं में निपुण हैं, गुणवती हैं वह राधिका मेरे जीवन के लिये अर्थात् मुझे सुख देने के लिये प्रति-दिन सूर्य्यपूजा के मिष से अपनी सरसी अर्थात् राधाकुंड में आती है ॥ १८ ॥

तस्या वयस्यापि दयां निरस्य
खिन्नं कथं मां कुरुषे विशाखे ! ।
हा खेलयेमौ मम नेत्रमीनौ
तद्रूपपीयूषसरित्यमन्दम् ॥ १९

इति चटुवदनश्चलाधरौष्ठः कुलवनिताततिचित्तरत्नचौरः ।
नयनसलिलधौतपीतवासा बनमाली सहसा वभूव तूष्णीम् ॥२०
तत्प्रेमवैक्लव्यविलोकनेन क्लान्तालिकाकारुणिकान्तराधिका ।
निरस्य नर्म्माणि विहस्य साश्रु स्तथ्यं वभाषे रसिकालिशेखरं॥२१

यदा गोविन्द त्वं नहि नयनयोरध्वनि गत-
स्तदा राधा वाधाभरविवशधीराधिविधुरा: ।
निमेषं कल्पं सा सपदि मनुते दुःसहतरं
वरं वृन्दारण्यं विषमविषजालायितभरम् ॥ २२

हे विशाखे ! तुम उस वयस्या राधा की दया को छिपाती हुई अर्थात् मुझ में उसका मन नहीं है ऐसा भाव दिखलाती हुई मुझे दुःखित क्यों कर रही हो ? । हा हा ! मेरी विनती सुनो । मेरे इन दोनों नेत्र रूपी मछलियों को उसकी रूपसुधा की सरिता में स्वच्छन्द विहार कराओ ॥ १९ ॥

मनोहर चञ्चलवदन, चंचल अधरोष्ठवाले, कुलरमणियों के चित्त-रत्न के चोर, वनमाली इस प्रकार कह कर हठात् मौन हो गये । उस समय नयनों की जलधारा से उनका पीतवस्त्र धुल गया ॥ २० ॥

उनकी ऐसी प्रेम विकलता को देखकर सखी विशाखा का बदन मलिन हो गया । अत्यन्त करुणा से भरी हुई आँखों में आँसू भर कर नर्म्म परिहास को छोड़ रसिकसमाज के शिरोमणि श्रीहरि को यथार्थ वात कहने लगी ॥ २१ ॥

हे गोविन्द ! सुनो । जब तुम उसके नयनों के सामने नहीं आते हो तो वह राधिका अतिशय मनो वाधा से विवश होकर पीड़ा से व्या-

तमालं वीक्ष्यालं पुलकिततनुः कम्पतरला
प्लुता नेत्राम्भोभि र्मलिनवदना खेदभरिता।
लुठद्वर्णा कण्ठे रहसि लिखिते वाश्रु फलके
प्रवीणा सा दीना त्वयि किल विलीना समभवत् ॥ २३
तदद्यै वाऽऽगत्य ऽऽकलय दयितां प्रेमभरजां
वहन्तीमार्त्तीणां ततिमतिशयोन्मादविवशाम्।
नवां कुञ्जे संगत्यमृतसरितं या नवनवां
मुदं धत्ते पातुं जगति विरसा सा श्वसितु मा ॥ २४
वियोगी कञ्जाक्ष्या मदनमथितोऽसि त्वमधुना
धुनानः सं देहं रसिकवर योगी भव हरे।
अहं यामीदानीं सुवल कलयाकल्पमतुलं
तयो र्निष्ठप्रेष्ठं कुतुककलया सुन्दरवरे ॥ २५

कुल हो जाती है। वह एक निमेषकाल को दुःसहनीय कल्प की भाँति जानती है। सर्वश्रेष्ठ यह श्रीवृन्दावन उसके लिये विषम विषजाल की भाँति प्रतीत होता है ॥ २२ ॥

वह प्रवीणा राधा वियोग से व्यथित होकर तमाल को देख कर पुलकायमान हो जाती है, काँपने लगती है, नयनजल से भीग जाती है। बदन मलिन पड़ जाता है और दुःख के भार से वह दब जाती है। वाणी कंठ में गदगद हो जाती है और एकान्त में बैठ तुम्हारा चित्र बनाती हुई स्वयं चित्र सी रह जाती है। मानो तो तुम में विलीन हो गयी हों ॥ २३ ॥

अतः आज ही वहाँ चल कर प्रेमभार से उत्पन्न आतुरता से व्याप्त, अत्यन्त उन्माद से विवश, नवीना प्राणप्रिया राधाको देखो। वह कुंज में बैठ कर तुम्हारे संग रूप नवनवायमान सुधा सरिता का पान करने के लिये उत्कण्ठित हो रही है ॥२४॥

हे हरे ! हे रसिकवर ! कमलनयनी राधिका के वियोग में तुम

अथहेयं राधां प्रियसखि हरि नैवकलितो
न जाने किंत्वेको व्रजभुवि न दृष्टाश्रुतचरः ।
परं वृन्दारण्ये भ्रमति रमणीयांगिरमणो
मनोज्ञोऽयं योगी हरिरिव ललामांगिरुचिः ॥२६

सुवलरचितरम्ययोगिवेषः स्मितदमितामलकैरवः सुकेशः ।
व्रजनवतरुणी हृदब्जभृङ्गः सपदि चचार विचारवानसङ्गः ॥२७

मध्ये भालतटं विशालविलसत्सिन्दूरविन्दूज्वलं
रुद्राक्षस्रजमायतां विदधतं भस्मावृताङ्गच्छविम् ।
अंसन्यस्तवराजिनं दरचलच्चूडं नवाब्जेक्षणं
राधाल्यो ददृशुः पुरा क्षितिलुठत्कौपीनपुच्छं हरिम् ॥ २८

कामोन्मत्त हो रहे हो । अतएव अब तुम सन्देह को छोड़कर योगी बनो। मैं अब जाती हूँ । हे सुवल ! तुम दोनों में प्रीति निष्ठ हो। अतएव तुम कौतुककला के द्वारा अतुलनीय प्रिय वेशरचना से सुन्दरवर श्रीहरि को भूषित करो ॥ २५ ॥

अनन्तर विशाखा वहाँ जाकर राधा के प्रति कहने लगी कि हे प्रिय-सखि ! मुझे हरि नहीं मिले हैं, वे कहाँ हैं मैं नहीं जानती हूँ । परन्तु व्रजभूमि में एक ऐसा परम सुन्दर मनोहर शरीर वाले योगिराज भ्रमण कर रहा है कि जैसा न किसीने कभी देखा न सुना है। वह हरि के जैसे मनोहर अङ्गकान्ति वाला है ॥ २६ ॥

श्रीकृष्ण सुवल के द्वारा योगीरूप बनाकर संगरहित हो अकेले भ्रमण करने लगे। उनके मन्दहास्य से अमल शुभ्रकुमुदिनी फीकी पड़ गई। व्रज नव तरुणियों के हृदय कमल के भ्रमर, योगीरूप धारी श्रीहरि बिचार में डूबे हुये से इधर उधर घूमने लगे ॥ २७ ॥

राधा की सखियों ने योगीरूपधारी श्रीहरि को सामने देखा। उन के भालदेश पर उज्ज्वल सिन्दूर का एक बड़ा सा टीका शोभा दे रहा था। वे लम्बी रुद्राक्ष की माला धारण किये हुए थे । उनकी अंग-

पुरो गत्वोवाचादरदरनिवद्धांजलियुता
विनीताक्षी चंचच्चटुलितमतिश्चपकलता ।
तपः सिद्ध स्वामिन् विरमग मनादार्त्तिदमनं
वनं धन्यं सद्यः कुरु पुलकृपावीचिनिचयैः ॥२६

अकस्माच्चित्रास्मै वत वितरति स्मासनवरं
परं पादाब्जेन प्रसभममयं दूरमकरोत् ।
अयं हुं हुं कुर्व्वन्निजमजिनमाधाय धरणौ
ध्रुवं दध्यौ राधाऽधरनवसुधां धीरललितः ॥ ३०
सतीनां मूर्द्धन्या नवयुवतिधन्याधिविधुरां-
तरा राधाऽसाधारणगुणगणागाधहृदया ।
दयासिन्धुं वन्धुं व्रजपतिसुतं वन्धुरधनं
ननामाऽमायाविन्यमलमुनिमाज्ञाय महितम् ॥ ३१

कान्ति भस्म से लिपटी हुई थी तथा कंधे पर सुन्दर मृगछाला पड़ी हुई थी । उनके मस्तक पर जुड़ा हिल रहा था । उनके नेत्र रक्तकमल की भाँति लाल वर्ण थे और कौपीन का अग्रभाग पृथिवी पर लटक रहा था ॥ २८ ॥

उस समय नमितनयनी, चंचलमतिवाली चम्पकलता बड़े आदर के साथ हाथ जोड़ कर योगी के आगे आकर कहने लगी । हे तपस्या-सिद्ध ! हे स्वामी जी ! आप कहाँ जा रहे हैं ? ठहरिये, आर्त्तिनाशक इस वृन्दावन को अपनी प्रचुर कृपाधाराओं से पवित्र कीजिये ॥२६॥

उस समय चित्रा ने उनके लिये पवित्र आसन प्रदान किया परन्तु उन्होंने चरण से उसको दूर ठुकरा दिया । धीरललित आप "हूँ हूँ" शब्द करते हुए अपनी मृगछाला को धरती पर बिछा कर बैठ गये तथा राधा के अधर नवसुधा का ध्यान करने लगे ॥ ३० ॥

सतियों के शिरोमणी, नवयुवतियों में धन्या, मनोव्यथा से व्या-

धुनानं मूर्द्धानं सनयचयमानन्दितमतिं
ब्रु वाणं कल्याणं किमपि कलनादं कुतुकिनम् ।
दधानं सन्मानं सपदि कलयन्ती स्मितमुखी
प्रियानन्दास्यंदा भवदतिरसानन्तविकृतिः ॥ ३२
पतंती पादान्ते ललितहसिता हंत ललिता
ततः पप्रच्छामुं मनसि निहितं कामितहितम् ।
अये सिद्धाधीश प्रकटय दयासागर दया-
मिदानीं मच्चित्ते किमिति वद मौनं न रचय ॥ ३३
उवाचायं नायं मम समुचितो नूनमनयो
ब्रु वे त्यक्त्वा मौनव्रतममलभक्त्या तव जितः ।
किशोर्या हेमाङ्ग्या ललितनवयूनो घनरुचे-
र्विलासं द्रष्टुं त सुदति तरलं संप्रति मनः ॥ ३४

कुल, असाधारण गुणवाली, अगाध हृदया राधा ने दया के सागर, प्राणबन्धु, मनोहर सम्पद स्वरूप ब्रजराजनन्दन को अमलात्मा पूजनीय मुनि समक्ष निष्कपटभाव से प्रणाम किया ॥ ३१ ॥

मस्तक को हिलाने वाले, सुन्दर नीतिपूर्ण कल्याणमय वचन को बोलने वाले, प्रसन्न हृदय वाले, कौतुक से बीच बीच में मधुर "वं वं" शब्दकारी, अविचलित चित्त, योगीवेशधारी श्रीहरि को देखती हुई स्मितमुखी प्रिया राधा अनन्त रस-बिकारों को प्राप्त हो गईं तथा आनन्द की धारा में सराबोर हो गईं ॥ ३२ ॥

तब मनोहर हँसतीं हुई ललिता उनके चरणों पर पड़ कर मन में गुप्त किसी वांछित विषय के जानने की इच्छा से पूछने लगी कि—हे सिद्धराज ! हे दयासागर ! अब दया करके "मेरे चित्त में क्या विचार है" उसे कहिये, मौन मत रहिये ॥ ३३ ॥

योगी जी कहने लगे—हे सुन्दर दन्तवालि ! यद्यपि मेरा बोलना

ततो ह्रीणा सद्यः सपदि ललितां विस्मयचिता
मुवाचेयं राधा विषमगति रत्याकुलमतिः ।
न चित्रं मे चित्ते स्थितमपि जगादायमपरम्
परं पश्याश्चर्यं द्रवति सुदति स्वान्तमतुलम् ।। ३५

अयं मन्ये नान्यः कमलनयने योगनिपुणो
नवीनानन्दश्रीतरलितमति र्जीवितपतिः ।
इति स्मित्वा साचीक्षणविशिखघातेन दयितं
विघूर्णत्सर्व्वाङ्गं ब्रजपतिसुतं तत्र विदधे ।। ३६

तयोरन्योन्यं तं ललितममलं वीक्षणमहं
विलोक्यालयो मोदार्णवनवनिमग्ना निजगदुः ।

उचित नहीं है, नीति विरुद्ध है तथापि तुम्हारी पवित्र भक्ति के वशीभूत होकर मौन त्याग कर बोलना पड़ रहा है । किसी सुवर्णांगिनी किशोरी तथा मेघकान्तिवाले मनोहर नवीन-युवा के विलास देखने के लिये तुम्हारा मन चञ्चल हो रहा है ।। ३४ ।।

यह सुनकर विस्मय से भरी हुई ललिता के प्रति रति में व्याकुल मतिवाली और विषमचेष्टा वाली लज्जिता राधिका कहने लगीं । हे सुन्दर दन्तवाली ललिते ! योगी ने जो कुछ कहा उसमें आश्चर्य नहीं है । वह तो मेरे ही चित्त की बात थी । इसने मुझे सुना करके ही औरों के लिये जो कहा है । परन्तु देखो, बड़े आश्चर्य की बात है । मेरा समस्त हृदय द्रवीभूत हो जा रहा है ।। ३५ ।।

"मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि—ये योगीराज अन्य कोई नहीं हैं । हे कमलनयनी ! ये तो नवीन आनन्द सम्पत्ति से चञ्चल हृदय वाले, प्राणपति श्रीहरि हैं ।" श्रीराधिका इस प्रकार कह कर मुस्कराती हुईं अपने तिरछे कटाक्षरूपी शरों के प्रहार से व्रजपतिनन्दन के सर्वाङ्ग को अतिशय विकल कर दिया ।। ३६ ।।

विशाखे विज्ञाता तव कितवताऽस्तासु नितरा-
मनेनारं योगिन्यतुलतपसा त्वं भव सखि ॥ ३७
न योग्या मे चात्र स्थितिरिह विविक्ते समुचिता
ततो यामीत्युक्त्वा चलितमजिनं न्यस्य शिरसि ।
समन्तादुत्तुङ्गातनुरसयुता मत्तमनसः
प्रमोदादावव्रुर्व्रजपतिसुतं गोपवनिताः ॥ ३८
काचिद्रुद्राक्षमालां करकमलगतामाचकर्ष प्रगल्भा
काचित्सिन्दूरबिन्दुं मदमथितमति मस्तकेऽस्तं चकार ।
काचित्कौपीनपुच्छं प्रखरतरतयागत्या जग्राह काचित्
कक्षादुत्क्षिप्य मार्गे स्मितललितमुखी चर्म चिक्षेप तन्वी ॥ ३९

दोनों के पारस्परिक अमल मनोहर दर्शन सुख को देखकर सखियाँ आनन्द समुद्र में डूब गईं तथा कहने लगीं—हे विशाखे ! तुम्हारी कपट चाल को हम सब जान गयीं। इससे तुम शीघ्र ही योगीराज की योगिनी बन जाओ । बहुत अच्छा होगा। वे तो योगीराज हैं। तुमने अतुल तपस्या की है, अतः उनकी संगिनी बन जाओ। दोनों एक ही साथ विचरने लगोगे ॥ ३७ ॥

"यहाँ स्त्री समाज में मेरा अकेला रहना उचित नहीं है, इसलिये मैं तो जाता हूँ।" इस प्रकार कह कर योगीराज मृगछाला को कंधे पर डाल चलने लगे। परन्तु जा कैसे सकते ? अत्यन्त ढीठ, रसवती, मत्तहृदया गोपरमणियों ने उन योगीवेशधारी श्रीहरि को चारों ओर से आनन्द के साथ घेर लिया ॥ ३८ ॥

फिर क्या था, किसीने उनके हस्त कमल में से रुद्राक्षमाला छीन ली, किसी प्रगल्भा ने मदमत्तवाली होकर उनके मस्तक पर से सिन्दूर विन्दु को मिटा दिया, किसी ने और भी प्रखर बन जाकर उनकी कौपीन की पूँछ को खींच ली। किसी ने काँख में से मृगछाला खींच कर हँसती हुई रास्ते पर उसे फेंक दी ॥ ३९ ॥

काचिच्चूडां मुमोच प्रहसितवदनाम्भोरुहा खञ्जनाक्षी
काचिन्नीरैः सुगन्धैः कनककलशगैराततानाभिषेकम् ।
काचित्पश्चादुपेत्येक्षणजलरुहयोरञ्जनं तस्य तेने
काचित्पौष्पैः परागैर्मृदुकरतलगैरास्यकञ्जं ममर्द ॥ ४०
काचिद्गण्डं नुनोदारुणमृदुलकरांगुष्ठमूलेन तन्वी
काचिद्धस्तं विकृष्य वददतिशयितं कुत्र यातं वलं ते ।
काचित्तत्रांबुजाक्षी छलयसि भुवनाशेषधूर्त्तेश नः किं
प्रोच्येत्थं कर्णयुग्मं मदकलविकला तस्य भुग्नं चकार ॥ ४१
आह्वानं तूर्णमद्य प्रथय सवयसां नन्दमाकारयारं
घोशाधीशा सहायं किमु वत सुतरां वत्सला नो तनोषि ।
किं वा कुत्र प्रयातः स किल वटुरिह ब्रह्मतेजोभिः पूर्णः
श्रीराधापादपद्मे स्पृश रचय वृथा कैतवं मा पुरो नः ॥ ४२

किसी खञ्जनाक्षी प्रफुल्लित कमलमुखी ने उनकी चूड़ा उतार ली । किसी ने सुवर्णकलस के सुगन्धित जल से उनका अभिषेक कर दिया । कोई पीछे से आकर उनके नेत्रकमलों में काजल लगाने लगी । किसीने कोमल करतल में पुष्पपरागों को रख कर उनसे उनके मुखकमल पर मल दिया ॥ ४० ॥

किसी ने अपने अरुण कोमल करांगुष्ठ से उनके गाल को दबाया तो किसी ने हाथ को खींच कर "तुम्हारा अतिशय बल सब कहाँ चला गया" ऐसा कहने लगी और कोई कमलनयनी "जगत् के समस्त धूर्तों के राजा ! लो और छलोगे हमें" ऐसा कह कर वह मतवाली उनके कानों को मलने लगी ॥ ४१ ॥

"अब अपने सखाओं के साथ नन्दबाबा को बुलाओ । ब्रजेश्वरी तुम्हारी माता यशोदा यहाँ आकर तुम्हारी सहाय क्यों नहीं करती हैं ? ब्रह्मतेज से परिपूर्ण तुम्हारे वह बटु कहाँ चला गया ? अब तो तुम्हारी सहायता कोई नहीं कर सकता है । हाँ एक उपाय है । श्रीराधा के

इत्थं चक्रुः प्रजल्पां ललितमतियुताः काश्चीदाभीरवाला
तेनुस्तालानुकारं तरलतरतया काश्चिदानन्दलास्यम् ।
कुर्व्वन्त्यो यष्टिकम्पं व्रजपतितनयं कम्पमानं समानं
काश्चित्तं भीषयन्त्यः स्फुटमिव विदधुर्विस्फुरन्मंदहास्यम् ॥ ४३

लिलेपेयं चित्रा मृगमदरसैराननविधुं
विशाखा सिन्दूरारुणविविधविंदूनतनुत ।
पुरस्तात्तेनेऽसौ सपदि ललिता दर्शममलं
लुलुम्पारं चित्रं बिलुलितविचारं शशिकला ॥ ४४

यदा नीतं पीतं वसनमिह धातुं स यतते
तदा तूर्णं तन्वी सपदि ललिता तत्र जगृहे ।
अहो धूर्त्तो नीवीं हरति सहसा जीवितपतौ
बहन्ती श्वासान्सा निभृततरकुंजे किल वभौ ॥ ४५

इति श्रीमधुकेलिवल्यां योगिवेशावृतज्ञातमाधवो नाम चतुर्थः पल्लवः ॥
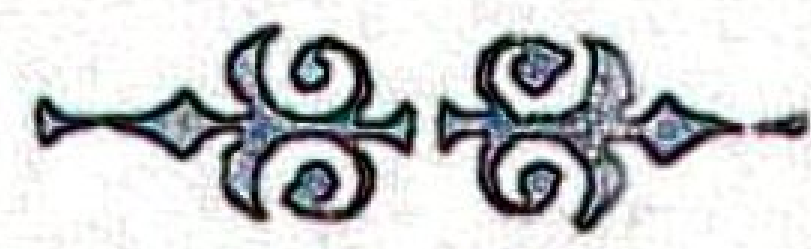
पादपद्मों को स्पर्श करो। वे क्षमा कर सकती हैं । अब हमारे आगे और ढोंग मत फैलाओ ॥ ४२ ॥

इस प्रकार कहती हुईं ब्रजांगनाऐं श्रीकृष्ण को डराने लगीं। कोई गोपरमणियाँ अत्यन्त चंचल बनकर ताल देने लगीं तो कोई आनन्द से नृत्य करने लगीं और कोई लठिया कँपाती हुई काँपते हुए ब्रजपतिनन्दन को भय दिखाने लगीं। सब खिलखिला कर हँसने लगीं ॥ ४३ ॥

उस समय चित्राने मृगमद रससे उनके मुखचन्द्र का लेपन किया, विशाखा ने सिन्दूर ले अरुण विविध बिन्दुओं से श्रृङ्गार किया और ललिता ने सामने उज्ज्वल दर्पण रख दिया तथा शशिकला ने विचार शून्य होकर शीघ्र चित्र का अङ्कन किया। ॥ ४४ ॥

तदैव शंदा ब्रजनव्ययूनो वृन्दा समागत्य जगाद राधाम् ।
या रत्नभृङ्गारजलेन सिक्ता पुष्पाटवी सा भवतीं प्रतीक्षते ॥१॥

तदा श्रुत्वैवेयं सपदि चलितानन्दवलिता
निजालीनामिच्छा द्रुतगतितया नापि कलिता ।
प्रियां यष्ठ्यारुध्य व्रजविपिनचन्द्रेण जगदे
वयं यामः क्वित्रा नहि वद सरोजाक्षि दयिते ॥ २

सदाभीरीदन्तच्छदधयनधौतास्यकमलो
मलातीतो नित्यं चटुलबनितालिङ्गनभरैः ।

उस समय श्रीकृष्ण अपने पीतवसन को पहरने के लिये चेष्टा करने लगे, किन्तु रसावेश के कारण पहन न सके । तब कृशोदरी ललिता वस्त्र लेकर पहनाने लगी । "अहो ! प्राणवल्लभ ने समस्त हरण कर लिया, केवल नीवी शेष रही । वह भी किसी समय हर ली जायेगी" ऐसा मन में कहती हुई तथा अत्यन्त घन श्वासों को लेती हुई वह राधा अति निभृत कुंज में शोभा को प्राप्त हुई ॥ ४९ ॥

उस समय व्रज के नवीनयुवा युगल को सुख देने वाली वृन्दा आकर राधिका को कहने लगी—हे राधे ! जिसको तुमने भृङ्गार (झारी) के जल से सींच सींच कर बढ़ायी है वह अटवी आज प्रफुल्लित फल-पुष्पों से सुशोभित होकर आपकी अभ्यर्थना के लिये प्रतीक्षा कर रही है ॥ १ ॥

वृन्दा के ऐसे वचनों को सुनकर आनन्द युक्ता श्रीराधा तुरन्त उसी समय द्रुतगति से चल पड़ी । अपनी सखियों की इच्छा की ओर कुछ ध्यान नहीं दिया । तब ब्रजवनेश्वर ने छड़ी के द्वारा प्रिया को रोक कर कहा कि—हे कमलनयनी ! हे दयिते ! कहिये, हम वहाँ जायेंगे या नहीं ? ॥ २ ॥

श्रीराधिका ने कहा-हे नन्दनन्दन ! आपका मुखकमल निरन्तर

परस्त्रीध्यानेन स्फुटमिह पवित्रीकृतमना
भवान् गंता नोचेत्कथयतु कथं शन्नु भविता ॥३
अहो वन्दे वाणि स्फुटमिह यथार्थैव भवती
ततो यामीत्युक्त्वा स्मितललितधौताननविधुः ।
व्रजन्नग्रे पश्यन्मुहुरथ परावृत्य दयिता
मुखाब्जं भ्रूभंगं दधदधिकमोदं व्यधित सः ॥ ४
करे यष्टिं गृह्णन्क्कचिदपि पुरो नन्दतनयः
क्कचित्पश्चादुद्यत्परिमलपटांदोलनपरः ।
क्वचित्पार्श्वद्वन्द्वे व्रततिकुलमुत्क्षिप्य कलयन्
प्रियास्याब्जं भेजे मनसि परमानन्दमतुलम् ॥ ५

आभीरिकाओं के अधरसुधा पानसे धौत है, चंचल वनिताओंके आलिंगन आधिक्य से आप नित्य परम शुद्ध हैं और आप पररमणी का ध्यान से स्पष्ट ही पवित्रमना हैं। ऐसे आप नहीं जायेंगे तो कहिये मंगल कैसे होगा ॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण "अहो वाणि ! मैं तुम्हारी बन्दना करता हूँ। तुम्हारा अर्थ यथार्थ है, अर्थात् राधाने जो कहा सो ठीक है। अतएव मैं चलूँगा" ऐसा कह कर वे आगे आगे चलने लगे । उनका मुखचन्द्र मनोहर मन्दहास्य से धौत हो गया। आप आगे चलते हुए बारम्बार पीछे मुह मुड़ कर प्रिया के मुख कमल के दर्शन करते हुए और भ्रूकुटी नचाते हुए अधिक आनन्द प्रदान करने लगे ॥ ४ ॥

नन्दनन्दन कहीं तो हाथ में छड़ी लेकर आगे आगे चलने लगते थे। (प्रिया के लिये कोई भय उपस्थित न हो जावे इस लिये) कभी पीछे आकर सुन्दर सुगन्धित पट्टवस्त्र को ऊपर उठा उठा कर हिलाते थे, अर्थात् वीजन करते थे। कभी तो पार्श्व के लताओं को हटाते हुए मार्ग साफ करते थे। तथा प्रिया के मुखकमल का अवलोकन करते हुए मन में अतुलनीय परमानन्द को प्राप्त होते थे ॥ ५ ॥

काचिच्छत्रेण तन्वी विमलरसयुता चामरेणात्र काचित्
काचित्ताम्बूलपात्र्या मणिचयचितया वीजनेनव काचित् ।
काचित्सार्द्धं लताभिर्मृदुलसुमनसां वर्षमातन्वतीयं
राधां वृन्दावनेशां परिचरणपरा सुन्दरी सेवते स्म ॥ ६
तदा हस्तन्यस्तस्फुटितसुमनोयष्टिरुचिराः
सदा राधा राधा जयति जयतीत्युक्तिमधुराः ।
मुदा नृत्यन्त्योमूर्मृदुतरविपञ्चीस्वरयुता
बभुः सख्यः सर्व्वा ललिततरगानामृतरसाः ॥ ७
मुदा शारीकीरौ युगलचरितोद्गानरसिकौ
सहोड्डीनौ स्नेहात्सपदि शुशुभाते पुलकितौ ।
शिखी नृत्यन्नग्रे विततवरपक्षः कुतुकतः
परं चक्रे हर्षं मधुररसवर्षं दयितयोः ॥ ८
ततो हृष्टाप्यन्तः कुटिलनयनान्तेन दयितं
दरालिंग्य स्मेरो मधुरतरमूचे प्रियसखीम् ।

उस समय कोई सुकुमारांगी छत्र धारण के द्वारा, कोई विमल रसवती चाँवर के द्वारा, कोई मणि विरचित ताम्बूल डब्बों के द्वारा, कोई बीजन के द्वारा, कोई कोमल पुष्प युत लताओं की वर्षा के द्वारा सेवापरा सुन्दरियाँ वृन्दावनेश्वरी राधिका की सेवा करने लगीं ॥६॥

उस समय समस्त सखियाँ हाथों में फुलछड़ी लिये हुईं "राधा की जय हो, राधा की जय हो" इस प्रकार मनोहर बोलती हुईं आनन्द के साथ नृत्य करने लगीं और कोई मनोहर वीणा बजाने लगीं, तो कोई अति ललित गानामृत रस में निमग्न हो गयीं ॥ ७ ॥

दोनों के चरित्र गायन में रसिक सारी-शुक भी स्नेह से तुरन्त साथ साथ उड़ कर पुलकित होकर शोभा को प्राप्त हुए तथा मयूर अपने पंख को फैला कर कौतुकवश आगे आगे नृत्य करने लगा। इस प्रकार सबने मधुररस वर्षाकारी हर्ष का प्रदान किया ॥ ८ ॥

विशाखे किं कुर्वे त्यजति नहि मां भूरिवचसा
निरस्तो भ्रूभंगैर्लुठति चरणान्ते मम हरिः ॥ ९
मयैष दृष्टोऽयं दशनधृतहस्ताङ्गुलिचयः
प्रियो हाहारावं सखि वितनुते दीनहृदयः ।
कदाचिन्निर्मञ्छ्योपरि मम पटं पीतममलं
स्वयं कुर्वन्वक्षस्यतुलपुलकांगो विलसति ॥ १०
निवार्योऽयं स्वालीपरिषदि भवाम्यानतमुखी
किमीहे मत्पादाङ्कितभुवि लुठत्यातुरमतिः ।
मयालोकं कृष्णःकुटिलनयनान्तेन कलितः
कलावान्धत्तेऽस्रं वहति नितरां श्वासनिवहम् ॥ ११

अनन्तर श्रीराधा अन्तर में प्रसन्न होकर भी बाहर कुटिल नयन-कोर से ही प्रिय को तनिक आलिङ्गन करती हुई हास्यकारी प्रियसखी को मधुर कहने लगीं । हे विशाखे ! क्या करूँ, मेरे अनेक मना करने पर भी श्रीहरि मुझे छोड़ते ही नहीं है, नेक टेढ़ी भौंह करते ही वे मेरे चरणों पर लोटने लगते हैं ॥ ९ ॥

और यह भी देखती हूँ कि ये प्रिय श्रीहरि दाँतों में अंगुलियाँ देकर व्याकुल हृदय से हाहा शब्द करते हैं अर्थात् हाहा खाते हैं और कभी स्वयं अपने पवित्र पीले पट्टवस्त्र को मेरे ऊपर निर्मञ्छन करके उसे अपने वक्ष पर लगाते हैं । इस प्रकार अतुलनीय पुलकों से मण्डि-तांग होकर प्राणवल्लभ विलास करते हैं ॥ १० ॥

इस सखी–समाज से निवारित किये जाने पर भी वे मेरी चरणां-कित भूमि पर आतुरता के साथ लोटते हैं । मैं हार लाचार सिर नीचे कर लेती, जो मैं अकारण कुटिल नयन कटाक्ष से इनकी ओर देख लेती हूँ तो ये रसकला–चतुर रुदन करने लगते हैं और निरन्तर दीर्घ श्वास लेने लगते हैं ॥ ११ ॥

विशाखा स्मित्वेयं सपदि नयनान्तेन ललितां
तथा चक्रे दृष्टेंगितमथ यथासौ मधुरिपुम् ।
निकुञ्जं प्रापय्य प्रणयरससावेशविवशा
विभूष्य स्त्रीवेशैः स्वयमिह विलोक्यैव मुमुदे ॥ १२

न दृष्ट्वा प्रेयांसं मनसि विकलाप्याशु ललिता-
मनालोक्याश्वासं समलभत राधातिनिपुणा ।
प्रविष्टालीपुंजै र्विपुलरमणीयां निजवनीं
तदा शून्यां मेने निमिषहरिविश्लेषविधुरा ॥ १३

तदैव श्यामालीं करधृतकराब्जां ललितया
वितन्वानां दृष्ट्वा कुवलयमयीं पुष्पितवनीम् ।
महानन्दामन्दाकुलितवपुषो मत्तमनस-
स्तदासन्पंचाल्यः कमलनयना निश्चलतमाः ॥ १४

तब विशाखा ने नयन के कोने से ललिता को इशारा किया । प्रणय रसावेश से विवशा यह ललिता मुरारी को निकुंज में ले जाकर स्त्री-वेश में सजाकर उनको देख देख कर आनन्दित होने लगी ॥१२॥

उस समय अति निपुणा राधिका प्राणवल्लभ को न देख कर मन में अत्यन्त व्याकुल हो गयीं परन्तु यहाँ ललिता को भी न देख कर "इसमें कोई रहस्य है" ऐसा जान कर शीघ्र ही आश्वासित हुईं । आपने अलिपुंजों से विपुल रमणीय निज वन में प्रवेश किया । आप निमेषमात्र के हरिवियोग से व्याकुल होकर समस्त बन को शून्यमय देखने लगीं ॥ १३ ॥

अपनी अङ्गकान्ति से पुष्पितवन को सर्वत्र नीलकमलमयी करती हुई, ललिता के हाथ में हाथ देकर आने वाली श्यामासखी को देख कर उस समय कमलनयनी राधिका महानन्द में अत्यन्त व्याकुल हो कर चेष्टाहीन चित्रपूतली की भाँति रह गईं ॥ १४ ॥

उस समय धीरा, कौतुकबुद्धिवाली, प्रमोदलहरी से व्याप्तशरीरा,

तदा धीरा राधा कुतुकरतधीरावृततनुः
प्रमोदाल्या पाल्या प्रणयरसपाल्या स्मितमुखी ।
विहीनां दोषैस्तां प्रमदभरलीनां सरलता-
लतावीतां स्वच्छस्फुटमनसि पप्रच्छ ललिताम् ॥ १५

सत्यं वदाद्य ललिते वनितामणिः का
सेयं तव प्रियसखी नहि दृष्टपूर्वा ।
राधे मृषा न कथयामलभावमुग्धे
जानामि नो कलय मंजुलकुंजगेहे ॥ १६

श्रीमद्रूपसनातनादिरसिकोत्तंसैर्विचिन्त्याः परं
गेया दिव्यनिधानवन्नविरतं श्रव्याश्च नव्याः सदा ।
राधागोष्ठमहीमहेन्द्रसुतयोः कुञ्जे विहाराश्चिरं
कण्ठान्तर्विलुठन्तु हारततिवद्दृश्याः सखीसंचयैः॥ १७

प्रीतिरस से पालिता, स्मितमुखी राधिका, दोषरहित प्रमोदाधिक्य में लीना, सरलता-लता से युक्ता अर्थात् अतिसरला ललिता से पूछने लगीं ॥ १५ ॥

हे ललिते ! सत्य कहो, आज तुम्हारे साथ यह रमणीमणि कौन है ? क्या यह तुम्हारी प्रियसखी है ? मैंने तो पहले कभी इसे नहीं देखा। अब ललिता कहने लगी-हे राधे ! झूठ मत बोलो । हे विशुद्ध-भावमुग्धे ! मैं भी नहीं जानती हूँ, तुम ही मनोहर कुंज गृह में इसे ले जाकर क्यों नहीं देखती हो ॥ १६ ॥

इसके आगे रहस्य के कारण निकुंजलीला गानयोग्य नहीं है परन्तु मन में ही चिन्तन योग्य है, अतः रहस्यलीलावर्णन की समाप्ति करते हुए ग्रन्थकार परिशेष में एक श्लोक के द्वारा रहस्यलीला का उद्देश्य बतलाते हैं-सखीकुल के द्वारा ही दर्शन योग्य अथवा एक मात्र सखी भावराशि द्वारा अनुभव योग्य श्रीराधा-व्रजराजनन्दन के कुंजविहार सर्वदा हम सबके कंठ में हार समूह की भाँति विराजमान होवें । जिस

नित्यानन्दसनातनामलनवद्वीपाभिराम प्रभो
भक्तोद्दामविशालकीर्त्तनरताद्वैतामितानन्दद! ।
राधाभावविभावितान्तरतनो श्रीरूपचिन्तामणे
लक्ष्मीप्राण गदाधरप्रिय हरे विश्वम्भर त्राहि नः ॥ १८

को श्रीरूप-सनातनादि रसिकसिरोमणियों ने केवल हृदय में ही दिव्य-निधि की भाँति धारण किया है, जो गाने की परम वस्तु है, जो निरन्तर श्रवण योग्य तथा नित्यनूतन रूप है ॥ १७ ॥

अब ग्रन्थकार ग्रन्थ समाप्ति के ऊपरान्त परिशेष में एक श्लोक के द्वारा सपरिकर महाप्रभु का स्मरण करते हैं—हे नित्यानन्द ! अर्थात् हे नित्य आनन्द स्वरूप ! (अन्यपक्ष में हे बलदेवावतार श्रीनित्यानन्द प्रभो !, हे सनातन ! अर्थात् हे नित्यविग्रह ! (पक्षान्तर में–हे महाप्रभु के प्रिय परिकर रूपाग्रज श्रीसनातनगोस्वामिन्),हे अमल निज नवद्वीप धाम में विहारशील ! हे महाप्रभो ! हे भक्तजनों के उद्दाम विशाल संकीर्तन में प्रादुर्भूत !, अथवा भक्तों का उद्दण्ड नृत्य के साथ जो महासंकीर्त्तन है उसमें शोभायमान प्रभो !, [उद्दण्ड कीर्त्तन में महा-प्रभु शीघ्र ही प्राकट्य हो जाते हैं ऐसा तात्पर्य्य है ।] हे द्वैतरहित ! तथा हे अमित आनन्द को देने वाले !, [अथवा हे अद्वैतनामक महा-रुद्रावतार निज परम पार्षद के अमित आनन्दप्रद !, अथवा पृथक् पद करने पर ऐसा अर्थ होता कि–हे रुद्रावतार अद्वैतप्रभो ! और अमित आनन्ददाता श्रीगौरांग !] हे राधाभाव से विभावित तन मन वाले ! [श्रीकृष्ण ही राधाभाव से भीतर तथा बाहिर विभावित हो कर गौरांग स्वरूप में प्रकट हुए हैं ऐसा सिद्धान्त है] हे श्रीरूप चिन्तामणि स्व-रूप !) आपका रूप ही चिन्तामणि की भाँति समस्त अभीष्ट पूर्ण करने में परम सामर्थ्य है यह तात्पर्य्य है । अथवा हे श्रीरूप गोस्वामी के हृदय निहित चिन्तामणि स्वरूप ! जिनको हृदय में करके ही श्री-रूपगोस्वामीजी व्रजरसवर्णन तथा मथुरामण्डल का उद्धार करनेमें

कृष्णचैतन्यकारुण्यपुण्यावनी रूपसंदर्भकल्पद्रुमालम्बिनी ।
वेल्लिता पञ्चभिः पल्लवैर्वर्द्धतां केलिवल्ली सतामालवाले हृदि ॥१६

इतिश्रीमधुकेलिवल्यां राधागोविन्दसमागमो
नाम पंचमः पल्लवः समाप्तः ॥ (५)

इति श्रीवृन्दाविपिनेश्वरीचरणारविन्दमिलिन्देन गोवर्द्धनभट्टेन
विरचिता मधुकेलिवल्ली समाप्ता ।
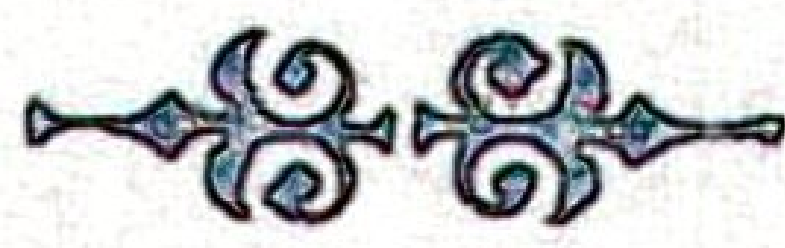
परम सामर्थ्यवान् हुएहैं यह तात्पर्यहै । अथवा पृथक् पद करके व्याख्या) करने पर-हे श्रीरूपगोस्वामिन्!तथा हे चिन्तामणि स्वरूप श्रीचैतन्यचन्द्र! हे लक्ष्मीप्राण अर्थात् हे लक्ष्मी नामक निजपत्नी के प्राणवल्लभ!हेगदाधर-प्रिय ! अर्थात् हे राधिका के अवतार श्रीगदाधरपण्डित गोस्वामी के प्रिय !) अथवा पृथक् पद करने पर हे श्रीगदाधर !, अर्थात् हे गदाधर पण्डित गोस्वामिन् !) हे हरे !, हे विश्वम्भर ! अर्थात् हे प्रेमभक्ति महाधन प्रदान के द्वारा विश्व का भरण करने वाले ! हम सबकी रक्षा कीजिये ॥ १८ ॥

पांच पल्लवों से ग्रथित अर्थात् पांच अध्याय रूप पंच पत्र गुच्छ से शोभित यह केलिवल्ली (मधुकेलिवल्ली) रसिक जनों के हृदय रूप आलवाल (थाँवला) में वृद्धि को प्राप्त होवें । जो महाप्रभु श्रीकृष्ण-चैतन्य की करुणारूप पवित्रभूमि में उत्पन्न हुई है (अर्थात् महाप्रभु की करुणा को ही आधार भूमी करके इसकी उत्पत्ति है) जिसने श्री-रूपगोस्वामी के वचनों को कल्पद्रुम रूप से आश्रित किया है । (अर्थात् श्रीरूपगोस्वामी के द्वारा वर्णित लीला-रस रहस्यादि कल्पवृक्ष स्वरूप है । यह मधुकेलिवल्ली नामक कल्पलता उसका आश्रय करके स्थित है)॥ १६ ॥ (अनुवादक-कृष्णदास)

नमः श्रीमदनमोहनाय ।

राधाकुण्डनिवासिनं सुविमले सन्मण्डले भासिनं
रूपावेशयुतं नुतं हरिजनैः प्रेमाम्बुधौ संप्लुतम् ।
धन्यं नन्दतनूजपूजनरतं भक्तेषु गण्यं पुरा
ग्रंथालीं रचयन्तमुज्ज्वलरसां श्रीविश्वनाथं भजे ॥ १

श्रीचैतन्यनिदेशतो भुवि पुरा व्यक्तीकृतमुज्ज्वलं
राधाकृष्णरसं विलोक्य पिहितं भूयो दयाकातरः ।
ग्रंथालीं रचयन् सदा परिचरन् गोविन्दपादाम्बुजं
मन्ये श्रीयुतरूप एव जयति श्रीविश्वनाथाभिधः ॥ २

धृतास्रं नवद्वीपचन्द्रानुरागैः सदा राधिकाकृष्णतृष्णाकुलांगम् ।
वसन्तं मुदा मञ्जुवृन्दावनान्तः शचीनन्दने भक्तवर्यं नमामि ॥ ३

अब श्रीयुक्त गोवर्द्धनभट्ट अपने समय के प्रसिद्ध, राधाकुंडवास-निष्ठ, महानुभाव कुछ रसिकों का नामोद्देश करते हुए उनके स्वरूप का वर्णन करते हैं—हम राधाकुंड निवासी, परमपवित्र, सन्त-भक्तमण्डल में शोभित, श्रीरूपगोस्वामि के आवेश स्वरूप, हरिजनों के प्रणम्य, प्रेमसमुद्र में डूबे हुए, धन्यतम, नन्दनन्दन के महान् सेवापरायण, भक्तों में मान्यगण्य, पूर्व में श्रीरूपगोस्वामि स्वरूप से उज्वलरस सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना करने वाले, श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजी का भजन करते हैं ॥ १ ॥

जिन्होंने रूपगोस्वामी स्वरूप में प्रकट होकर पृथिवी में पहले श्री-चैतन्यदेव के आदेश से उज्वलरस का व्यक्त किया और उस उज्वल राधाकृष्ण रस को आच्छादित देख कर अत्यन्त करुणावश कातर हो निरन्तर गोविन्दपादपद्म की सेवा करते हुए ग्रंथाली की रचना की है, वे श्रीयुक्तरूपगोस्वामी ही वर्त्तमान में विश्वनाथचक्रवर्त्ती नाम से जय को प्राप्त हो रहे हैं ऐसा मेरा सिद्धान्त है ॥ २ ॥

नवद्वीपचन्द्र गौरहरि के अनुराग से निरन्तर अश्रुनयन, राधा-

कृष्णमन्जुलकथाभिनिवेशं सेवितेष्टललितव्रजेशम् ।
राधिकाचरणदास्यविलासं संश्रयीमहि गदाधरदासम् ॥ ४

श्रीमद्राधाविनोदं व्रजपतितनयं गोकुलानन्दमुद्यन्
मोदं कुर्व्वन्तमन्तर्निरुपमपरमप्रेमसेवानिकायैः ।
भक्तान् संतोषयन्तं मधुरतमगिरा श्रीलवृन्दावनाख्यं
भट्टाचार्य्यं विलोक्य स्वनयनयुगलं कर्हि कुर्व्वे कृतार्थम् ॥ ५

कन्थामंसतटे वहन्तममलां वृत्तिं सदैवाश्रितं
कुर्व्वन्तं व्रजनागरीप्रियहरेः सेवां मुदा मानसीम् ।
राधाकुंडनिवासिनं जितरसं चैतन्यदास्योत्सुकं
श्रीमन्तं घनमाधवं अहहहा द्रक्ष्यामि भूयः कदा ॥ ६

गोविन्द की प्राप्तितृष्णा में सर्व्वदा विकल शरीर, मनोहर श्रीवृन्दावन में वास परायण, शचीनन्दन के भक्तश्रेष्ठों को मैं नमस्कार करता हूँ॥३

कृष्ण की मनोहर कथा में अभिनिविष्ट, इष्टदेव मनोहर व्रजेश की सेवा में निरत, राधिकाचरण के दास्यरस में विलासी श्रीगदाधरदास जी का हम आश्रय लेते हैं ॥ ४ ॥

जिन्होंने राधाविनोद तथा व्रजराजनन्दन गोकुलानन्दजी को अनुपम परम प्रेममयी सेवाओं के द्वारा प्रसन्न किया है तथा जो अत्यन्त मधुमयवचनों से भक्तसमाज को प्रसन्न करते रहते हैं, उन श्रीवृन्दावन-भट्टाचार्य्य का दर्शन कर कब मैं अपने नयन युगल का कृतार्थ करूँगा ॥ ५ ॥

निरन्तर कन्धे में कन्था धारण करने वाले, माधुकरीवृत्ति परायण, व्रजनागर-नागरी की मानसीसेवा में निरत, राधाकुंड निवासी, जितेन्द्रिय तथा श्रीचैतन्यचन्द्र के दास्य में उत्सुक, श्रीमान् घनमाधव जी का हम बारम्बार कब दर्शन करेंगे ॥ ६ ॥

सर्व्वत्र भ्रमणं विहाय निवसन् राधासरोरोधसि
श्रीमद्भागवतं पठन् भुवि लुठन् कृष्णाभिधामारटन् ।
वंशीदासतया प्रसिद्धमयितो भुञ्जन्सगव्यं फलं
प्रीतीमप्यमलां तनोत्वविकलां वाक्चातुरीसागरः ॥ ७

हसन् कर्म्मज्ञानादरपरनरान् सूरिषु लसन्
बसन् राधाकुंडे व्रजनवकिशोरावभिलषन् ।
हरन्नन्तस्तापं मतमुपदिशन्गौरकलितं
प्रियश्यामानन्दः स्फुरतु हृदये कृष्णचरणः ॥ ८

सदा कृष्णाविष्टं हृदि समुदितैः सख्यलहरी-
रसैः पुष्टं जुष्टं परकरुणया जीवनिवहे ।
कथञ्चिन्नो हृष्टं सुजनगणतुष्टं शमयुतं
भजे वृन्दारण्ये विजितकरणं रामशरणम् ॥ ९

जिन्होंने सर्व्वत्र भ्रमण छोड़कर राधासरोवर के तट पर निवास करते हुए, श्रीमद्भागवत पाठ, कृष्णनाम का कीर्त्तन, व्रजरज में लुण्ठन तथा गोदुग्ध फल के भोजन के द्वारा जीवन निर्व्वाह किया है, वे वाक्चातुरी के सागर वंशीदास नाम से प्रसिद्ध सन्त शिरोमणि, विशुद्ध प्रीति का विस्तार करें ॥ ७ ॥

जो निरन्तर कर्म्मठ-ज्ञानपरायण जनों को हँसते थे, जो पण्डित शिरोमणि तथा राधाकुंड में वास करने वाले हैं, जिन्होंने व्रज नव-किशोर-किशोरी की अभिलाषा में निरन्तर मन लगाया है तथा गौरांग-महाप्रभु के द्वारा प्रचारित मत का उपदेश करते हुए अन्तर के तापों का हरण किया है, वे श्यामानन्द प्रभु के प्रिय कृष्णचरणगोस्वामी हृदय में स्फूर्त्त हों ॥ ८ ॥

निरन्तर कृष्णाविष्ट हृदय, सख्यलहरीरसों से परिपुष्ट, जीवों में परमकरुण, निरन्तर प्रसन्नचित्त, सज्जनगण में विराजित, शम-दम परायण, जितेन्द्रिय रामशरण जी का हम वृन्दाबन में भजन करते हैं ॥ ९ ॥

नन्दानन्दनकृष्णमञ्जुचरितामन्दाभिलाषः परं
नित्यानन्दपदारविन्दमकरन्दास्वादमत्तान्तरः ।
निर्विण्णो विषयेषु बद्धहृदयो गान्धर्विकासेवने
नित्यं रामहरिः करोतु बिमलं वासं व्रजे सोत्सवम् ॥ १०

श्रीचैतन्यपदारविन्दमधुपो राधांघ्रिदास्याशयो
गेहं भूरिधनांचितं परिजनं संत्यज्य वृन्दावने ।
आयातो हरिनामसेवनपरः सार्द्धं समचर्चौच्चयैः
कालं कृष्णकथाश्रवैश्च मुरलीदासो नयत्यन्वहम् ॥ ११

यो नित्यं यमुनातटे नतिततिं प्रीत्याचितां दण्डवत्
कृत्वा भोजयतीह वैष्णवगणं संजप्य कृष्णाभिधाः ।
स श्रीगोकुलदास एष नितरां राधांघ्रिदास्योत्सुको
मन्नेत्रे शिशिरीकरोतु सततं श्रीश्रीनिवासानुगः ॥ १२

नन्द के आनन्द श्रीकृष्ण के मनोहर चरित्र में अखण्ड अभिलाषा रखने वाले, नित्यानन्द प्रभु के पदारविन्द मकरन्दरस आस्वादन में मत्त हृदय, विषयों में अनासक्त, श्रीराधिका की सेवा में मन को बढ़ाने वाले श्रीरामहरि नित्य ही वृन्दाबन में पवित्र सुखमय वास का प्रदान करें ॥ १० ॥

श्रीचैतन्य पदारविन्द के भ्रमर रूप जिन्होंने राधापादपद्म के दास्य की आशा से प्रचुर वैभव पूर्ण गृहादि का त्याग कर वृन्दाबन में आकर हरिनाम सेवन तथा कृष्णकथा श्रवण में आठों प्रहर समय बिताया है, वे श्रीमुरलीदास अपने संगवास प्रदान करेंगे ॥ ११ ॥

जो निरन्तर यमुनातट में विराजित होकर प्रीति के साथ दण्डवत् नमस्कार करते हैं तथा जो कृष्णनाम जप के ऊपरान्त नित्य वैष्णवों को घर पर लाकर भोजन देते हैं, वे श्रीराधा के पादपद्मदास्य में उत्सुक, श्रीश्रीनिवासप्रभु के अनुगत गोकुलदासजी निरन्तर मेरे नेत्रों को शीतल करें ॥ १२ ॥

यो नित्यं विरचय्य चारुचरितैर्नन्दात्मजस्यांचितं
भाषागीतचयं प्रगायति मुदा साश्रुः सरोमोद्गमः ।
वृन्दारण्यनिवासिना विनयिना राधाभिधोल्लासिना
तेन श्रीलदयासखीतिविदितेनास्तां सदा संगतिः ॥ १३

यः श्रीभागवतं करोति सकलं कण्ठाग्रगं मोदतो
गोपालेन्द्रतनूजपूजनरतो राधांघ्रिदास्योत्सुकः ।
भूरि श्रीव्रजभूमिषु भ्रमति यो भक्त्या भरेणाभृतः
संगस्तेन भवत्विह प्रतिदिनं श्रीकृष्णदासेन मे ॥ १४

राधाकृष्णपदाब्जरञ्जितमना नानाविधैरुज्वलै-
श्चातुर्य्यैः स्वगिरामपाकृतनराज्ञानः सुहासाननः ।
रम्यश्रीहरिवंशबंशतिलको वृन्दावनीयावनी-
संसिक्तो नितरां जयत्यधिधरं श्रीमान् दयाढ्यो हितः ॥१५

जो नित्य नन्दनन्दन के मनोहर चरित्रों से युक्त भाषा में पद्य रचना कर रोते हुए रोमाञ्चकलेवर से गान करते हैं, बृन्दावननिवासी, विनयी, राधानाम से उल्लसित तथा "दयासखी" नाम से प्रसिद्ध, उन महानुभाव का संग सर्व्वदा हमें मिले ॥ १३ ॥

जिन्होंने आनन्द के साथ समस्त भागवत को कंठाग्र किया है तथा जो गोपराजनन्दन के पूजन में रत और राधा के पादपद्म दास्य में उत्सुक हैं, जो अत्यन्त भक्ति से निरन्तर ब्रजभूमि में भ्रमण करते रहते हैं उन कृष्णदासजी के साथ मेरा प्रतिदिन संग लाभ हो ॥१४॥

राधाकृष्ण के पादपद्मों में मन को रंगाने वाले, अपनी उज्वल चातुरीमयी वाणियों से मनुष्यों का अज्ञान दूर करने वाले, हास्यमुख, मनोहर श्रीहरिवंश वंश के तिलक स्वरूप, बृन्दावन रस में भीजे हुए, श्रीमान्, दयाल, हित अथवा तो दयाहित पृथिवी में जय को प्राप्त हो रहे हैं ॥ १५ ॥

श्रीचैतन्यमहाप्रभुं भुविलुठत्कायं प्रणम्यार्थये
वृन्दारण्यनिवासिनो मम कदाप्यस्तु स्त्रियां मा मनः ।
श्रीराधाचरणाब्जदासवदनाद्गोविन्दलीलारसो
यस्यां याति न कर्णयोः परिसरं नामावलीमञ्जुलः ॥ १६
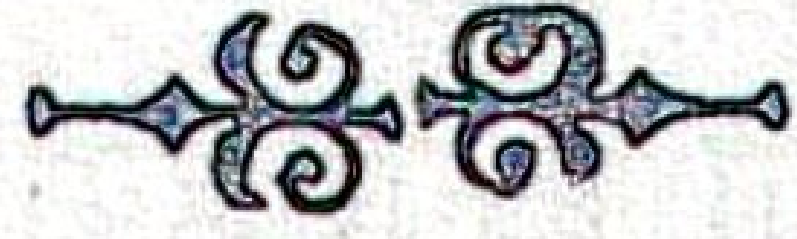
मैं पृथिवी में साष्टांग होकर प्रणाम के द्वारा श्रीचैतन्यमहाप्रभु को प्रार्थना करता हूँ कि बृन्दाबननिवासी मेरा कभी हृदय में स्त्री लालसा न रहे । क्यों कि जिसके रहने पर श्रीराधा के चरणकमल में दास्यरस चाँहने वाले रसिकों के मुखारविन्द से निर्गत श्रीगोविन्द की लीलारस-रूप मनोहर नामावली कर्ण परिसर में नहीं आ सकती है ॥ १६ ॥
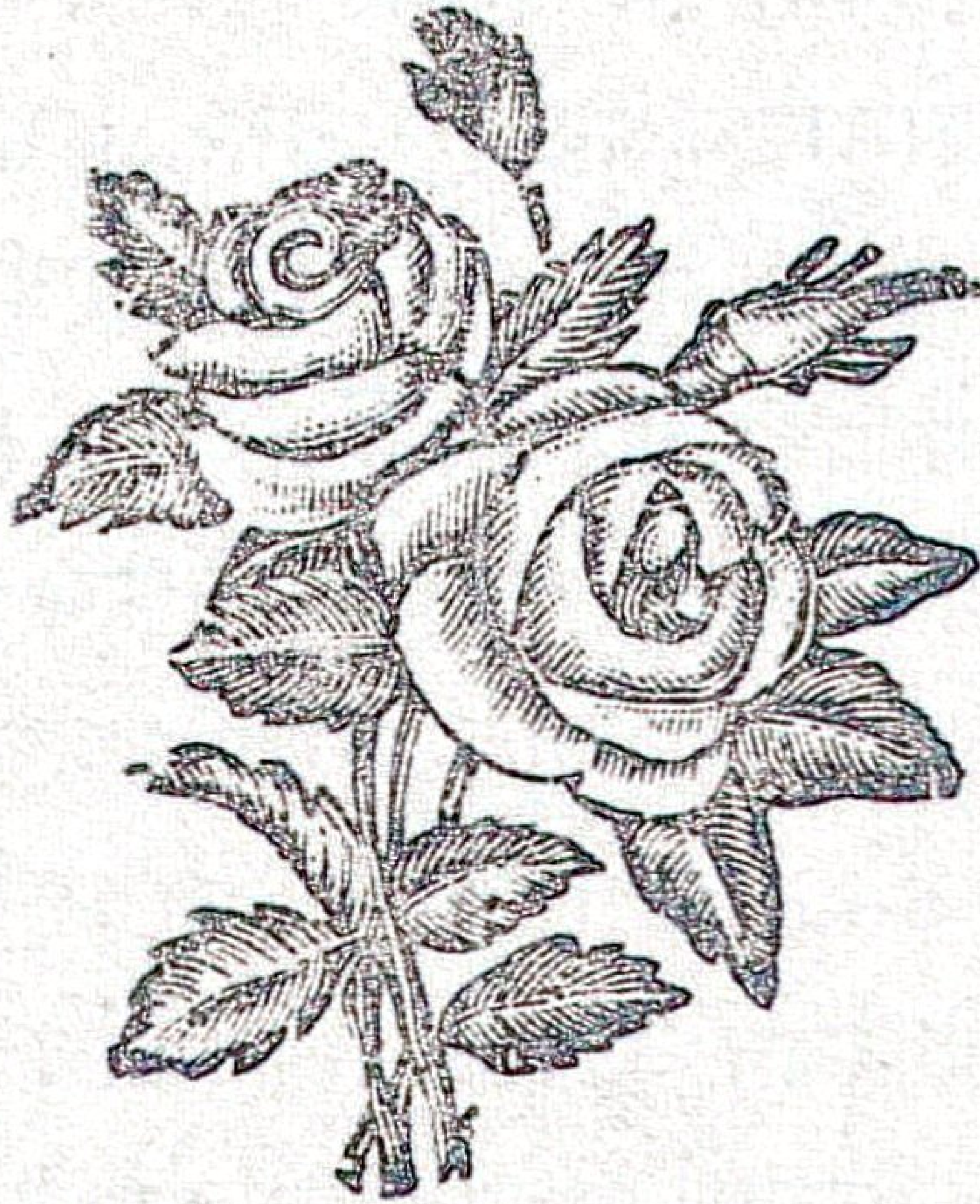
श्रीवृन्दारण्यविलासिनौ जयतः

श्रीमद्राधाकुंडस्तवः

माहङ्मूढहृदन्धकारशमनी त्रैलोक्यसंव्यापिनी
सद्भक्ताश्रु पयोनिधेरतितरां संवर्द्धिनी सन्ततम् ।
स्वप्रेमामृतवर्षिणी निजजनापीडोष्णताकर्षिणी
कान्तिर्गौरमुकुन्दपादनखरेन्दूनां प्रपुष्णातु नः ॥ १ ॥

नीचस्यापि मतिः स्वकीयविलसद्ग्रन्थावलोकोद्यता
रम्या यैः समकारि मेऽद्य करुणापूर्णान्तरैरुज्ज्वलैः ।
तान् राधांघ्रिसरोजदास्यरसिकान् श्रीरूपगोस्वामिनो
वन्दे गोपमहीपसूनुचरिताम्भोधौ निमग्नान् सदा ॥२॥

श्रीश्रीगौरहरि र्जयति

मुझ समान मूढ़जन के हृदयान्धकार की नाशकारिणी, तीन लोक में परिव्याप्त, निरन्तर सद्भक्तजनों के अश्रु समुद्र को अत्यन्त बढ़ाने वाली, निज प्रेमामृत वर्षणशील, निज जनों की पीड़ा-जनित उष्णता को आकर्षण करके शान्त करने वाली, श्रीगौरांग हरि के पादनख चन्द्रमाओं की सरस कान्ति हम सब का परिपोषण करें ॥१

हम निरन्तर राधिका चरण कमलों के दास्यरस में रसिक, गोपराजनन्दन के चरित्र सागर में निमग्न, श्रीरूपगोस्वामिमहोदय की बन्दना करते हैं। जिन्होंने आज करुण हृदय होकर उज्वल कृष्ण-भक्तिरसों के द्वारा मुझ नीच की मति को अपने विराजमान ग्रन्थों के अवलोकन में उद्यत कराते हुए मनोहर बना दी है, अर्थात् उन की कृपा से ही मेरी मन्दबुद्धि उनके द्वारा विरचित उज्वलनीलमणि आदिक ग्रन्थों के अवलोकन में महान् समर्थ हुई है ॥२॥

श्रीमद्गोविन्ददेवार्च्चनपरमनसः प्रेमपीयूषमत्तान्
स्वीयस्वान्तव्रजेन्दुप्रणयचयरसाम्भोधिवर्षाविधातृन् ।
श्रीराधाकुण्डवासप्रदवरकरुणान्माद्दृशान्धाश्रयश्री-
पादाब्जान् वल्लवेन्द्रात्मजगुणनिरतान् श्रीगुरूनानमामि ॥३॥
यानाश्रित्य विशुद्धभावभरतो वृन्दावने मानवाः
के राधाव्रजराजसूनुकरुणां नापुः परैर्दुर्लभाम् ।
येऽस्मान् श्रीवृषभानुजांघ्रिनलिनाशक्तानकुर्व्वन् भृशं
तान् श्रीमत् पितृपादपङ्कजगतान् रेणून्नमस्कुर्महे ॥ ४ ॥
वेदान्तादिकशास्त्रवृन्दवलिता लोके तु के पण्डिताः
श्रीमद्भागवतं रसाम्बुधिमहो सन्ति ब्रुवन्तो नहि ।

श्रीगोविन्ददेव के अर्च्चनपरायण, प्रेमपीयूष पान से उन्मत्त, निज हृदय में व्रजचन्द्रमा के प्रणयरस सागर की वर्षा का धारण करने वाले, श्रीराधाकुण्ड वास प्रदान में प्रवर करुण अर्थात् जिनकी वर करुणा से श्रीराधाकुण्ड वास मिलता है, मुझ जैसे अन्धजन के आश्रय स्वरूप श्रीचरण कमल श्री के धारणकारी तथा गोपेन्द्रात्मज की मनोहर गुणावली में परम अनुरक्त, श्रीगुरुदेव को नमस्कार कर रहा हूँ ॥ ३ ॥

जिनका आश्रय करके ऐसा कौन मनुष्य है कि जो वृन्दावन में विशुद्ध भावपरायण होकर औरों से दुर्ल्लभ राधाव्रजराजनन्दन की करुणा को प्राप्त नहीं हुआ अर्थात् जिनके आश्रय से सब ने करुणा की प्राप्ति की तथा जिन्होंने श्रीवृषभानुनन्दिनी के चरणकमलों में हम सब को परम आसक्त किया है, उन श्रीपिता के पादपंकज स्थित रज को हम बार-बार नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

इस लोक में वेदान्तादि शास्त्रों में चतुर कौन से पण्डित नहीं हैं कि जो रससागर श्रीमद्भागवत का आश्रय नहीं करते हैं अर्थात्

गोष्ठेन्द्रात्मजभक्तमानववरेभ्येतस्य रूपं सदा
वध्वा ये किल दर्शयन्ति जनकांस्तानन्वहं संभजे ।। ५ ।।

गान्धर्वापदपद्मशक्तमनसां येषां कथासंश्रवाद्
गोपेन्द्रात्मजकेलिसंरतप्रियादासादयो वैष्णवाः ।
बिभ्रत्यन्वहमन्तरोल्लसदति प्रेमोद्गतान्पुद्गले
रोमाञ्चादिकसात्त्विकान् निजपितॄंस्तान्नौमि कृष्णप्रियान् ।।६।।

नो दृष्ट्वा लवमात्रमप्यनुपमान् यान् वल्लवेन्दुप्रिया
वृन्दारण्यनिवासिनः खलु सदा मुह्यन्ति रागाकुलाः ।
मादृङ्नीचतमोऽपि यत्करुणयैवामुं स्तवं राधिका-
कुण्डस्य प्रसभं करोति जनकास्ते पान्तु नः प्रत्यहम् ।। ७ ।।

सब कोई रससागर श्रीभागवत का गान करते हैं। आपने मानो तो भागवत के स्वरूप को व्याख्यादिकों से बाँध कर मूर्त्तिमान करके उसे ब्रजराजनन्दन के भक्तजनों को दिखला दिया है। उन पितृ चरणोंका हम भजन करते हैं ।। ५ ।।

गोपराजनन्दन के केलिरस में निरत श्रीप्रियादास आदिक वैष्णवजन, श्रीराधिका के चरण कमलों में आसक्त चित्त जिनकी भागवतव्याख्या के संसर्ग से रोमाञ्चादि सात्त्विकभावों का धारण कर अन्तर में प्रचुर प्रेमानन्द को प्राप्त हुए हैं, श्रीकृष्ण के परमप्रिय उन निज पिता को हम नमस्कार करते हैं ।। ६ ।।

जिन को निमिष मात्र नहीं देखने पर वृन्दाबन निवासी, कृष्णचन्द्र के प्रिय भक्तगण विरह में व्याकुल होकर मोह को प्राप्त हो जाते हैं तथा जिनकी करुणा से ही नीच से नीच हम इस राधाकुण्ड-स्तव की रचना में समर्थ हो रहे हैं वे उपमा से रहित श्रीपितृचरण हमें निरन्तर रक्षा करें ।। ७ ।।

यां दृष्ट्वा शक्तचित्तः किरति नहि मनाग्गोकुलस्त्रीसमूहे
सोमाभादौ स्वदृष्टिं प्रणयविलसितां घूर्णितो नन्दसूनुः ।
अन्यत् किं सर्व्वकेलिं त्यजति मनसि यां संविचार्य्यापि कृष्णो
गान्धर्व्वां प्रेमपर्व्वोचितमतिमनिशं हन्त वन्दामहे ताम् ॥ ८॥

नीलमञ्जुलनिचोलसंवृतां नन्दसूनुगतप्रेमसंभृताम् ।
वल्लवीनिवहगर्व्वनाशिनीं राधिकां खलु भजे विलासिनीम् ॥९॥

राधा रूपगुणैरगाधविभवा गोविन्दबाधाहरी
वृन्दारण्यविलासिनी सुमुदितैरालीजनैर्हासिनी ।

अब ग्रन्थकार चार श्लोकों के द्वारा श्रीराधिका की स्तुतिरूप मंगलाचरण करते हैं-जिनके दर्शन करके आसक्तहृदय नन्दनन्दन घूर्णायमान हो जाते हैं और अन्य ब्रजरमणियों में तथा श्रेष्ठ श्रीचन्द्रावली के प्रति भी अपनी प्रणय विलास दृष्टि को नहीं डारते हैं और अधिक क्या कहूँ, जिनको मन में स्मरण करके वे श्रीकृष्ण समस्त क्रीड़ाविनोद का त्याग कर देते हैं, अहो! प्रेम उत्सव में उल्लसित मतिवाली उन श्रीगान्धर्वा राधिका जी की हम बन्दना करते हैं ॥८॥

मनोहर नीलाम्बरधारिणी, नन्दनन्दन में महान् प्रेमधारिणी, ब्रजांगनाओं के गर्व की नाशकारिणी, परमविलासिनी श्रीराधिका का हम निश्चय ही भजन करते हैं ॥ ९ ॥

वे श्रीराधिका आनन्द के साथ मुझे अपने दास्यरस का प्रदान करें अर्थात् प्रसन्न होकर मुझे अपनी दासी बना लें। जो रूप-गुणों में अगाध वैभवशालिनी हैं तथा गोविन्द की मनोबाधा को हरण करने वाली और वृन्दावन में निरन्तर विलास कारिणी हैं, परम प्रसन्ना

कारुण्यामृतवर्षिणी निजजने नन्दात्मजे तर्षिणी
स्वीयं दास्यरसं मुदा ददतु मे द्राग् दीनदैन्यासहा ॥१०॥
श्रीगोविन्दासिताङ्गद्युतिमिलितलसद्गौरदीप्तिच्छटाभिः
पूर्णा घूर्णाकुलाक्षी व्रजपतितनयप्रेमचूर्णातिमत्ता ।
केलीपुंजैकमूर्त्तिः प्रणयविरचिताशेषकामाभिपूर्त्ति
वृन्दारण्येश्वरी मे वितरतु सततं राधिकानन्दवृन्दम् ॥११॥
श्रीराधाकुचकुम्भकुङ्कुमलसद्वक्षःस्थलान्तर्लुठद्
हारं मञ्जुमयूरपिञ्छमुकुटं गोपालिकानां प्रियम् ।
केयूरादिविभूषणैः सुललितं वंशीनिनादामृत-
प्रोद्यद्गोकुलनागरीमनसिजं वृन्दावनेन्दुं भजे ॥१२॥

सखियों से हास्यमुखी तथा अपने जनों के ऊपर कारुण्यामृत की वर्षा करने वाली हैं और नन्दनन्दन में परम उत्कण्ठा को देने वाली हैं। जो गरीबों के दैन्य को नहीं सह सकती हैं ॥ १० ॥

वे वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिका मेरे लिये निरन्तर आनन्द-समूह का वितरण करें। जो श्रीगोविन्द के श्यामांग कान्ति से युक्त शोभायमान गौरांग कान्ति छटा से परिपूर्ण हैं, प्रेम से घूर्णायमान नेत्रवाली हैं, ब्रजराजनन्दन के प्रेम पराग के आस्वादन में उन्मत्ता हैं, केवल केलिपुन्ज की मूर्त्ति हैं तथा प्रणययुक्त अशेष कामनाओं की परिपूर्त्ति करने वाली हैं ॥ ११ ॥

अब ग्रन्थकार चार श्लोकों के द्वारा श्रीकृष्ण की वन्दनारूप मंगलाचरण करते हैं-श्रीराधिका के कुचकुम्भ कुंकुमरस से शोभायमान वक्षःस्थल पर मनोहर चञ्चलमाला के धारणकारी-मनोहर मयूर-पुच्छों से विरचित मुकुट वाले, गोपांगनाओं के प्रिय, कंकण, बाजूबन्द आदि भूषणों से विभूषित, वंशीनादामृत के द्वारा गोकुलरमणियों के काम को बढ़ाने वाले, वृन्दावनचन्द्र श्रीकृष्ण का हम भजन करते हैं ॥ १२ ॥

वृन्दारण्यविलासिनी समुदयैरूपान्वितैर्वेष्ठितं
गान्धर्वामुखचन्द्रदर्शनभवानन्देन संघूर्णितम् ।
कृष्णं वेणुनिनादवैभवभरोन्माद्यद्व्रजस्त्रीगणे
भावोल्लासधरं भजामि सततं गोपालपालात्मजम् ॥१३॥

राधाकुण्डविलासशक्तहृदयं गान्धर्विकाया वशं
रम्यैर्नादचयैः सदा मुरलिकां पूर्णां दधानं मुखे ।
श्रीवृन्दाविपिनेश्वरीं प्रणयतः संसेव्यमानं मुदा
गोविन्दं व्रजनागरीभिरसकृत्प्रार्थ्येक्षणं नौम्यहम् ॥१४॥

श्रीराधा यत्र वाधामलनिजसरसीपीतपद्मेषु गुप्ता
स्वालीरालीनभृंगेष्वतिशुचिहसिता वारयन्ती करेण ।

परम रूपवती, वृन्दाबनविलासिनी गोपांगनाओं से परिवेष्ठित, श्रीराधिका के मुखचन्द्र दर्शन से उत्पन्न आनन्दाधिक्य के द्वारा घूर्णायमान, वंशीनादवैभव से उन्मादित, व्रजरमणियों के प्रति भावोल्लास का धारण करने वाले, गोपराज के नन्दन श्रीकृष्ण का हम भजन करते हैं ॥१३॥

राधाकुण्ड में विलास करने के लिये आसक्त हृदय, राधिका के वशीभूत, मनोहर नादामृत से परिपूर्ण मुरली को मुखारविन्द में निरन्तर धारण करने वाले, प्रणय सहित आनन्द युक्त होकर वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिका की सेवा में तत्पर तथा व्रजनागरियों के बारम्बार प्रार्थ्यमान नेत्रकमलों के द्वारा शोभायमान श्रीगोविन्द को हम नमस्कार करते हैं ॥१४॥

जिस समय (जलविहार के समय) श्रीराधिका, भृंगों से परिवेष्ठित पीतकमलावली से विभूषित निज पवित्र सरोवर श्रीराधाकुण्ड में जलविहार करती हुईं कमलबन में छिप गयीं तथा सखियाँ

विन्दन्निन्दिन्दिर इव युतां माधवीं तर्हि गन्धैः
पायाद्गायाभिपूर्णो व्रजपतितनयः प्राप्तमोदः स्वकान्तः ॥१५॥

यस्मिन् रम्यनिकुंजपुंजवसतिः श्रीराधयाऽगाधया
रूपेणाप्रतिमामितै गुणचयै रभ्यक्तया मादितः ।
आभीरेन्द्रसुतो युतो विजयते ह्याभीरिकाभीरसात्
तं वृन्दाविपिनं सुखान्यनुदिनं दद्यादिनं धामसु ॥१६॥

यल्लावण्यभरं विलोक्य गुणिनां मौलिर्व्रजेन्द्रात्मजो
मत्तो हन्त शिरोविधूननमसौ धत्ते मुहुर्विस्मितः ।
तस्यास्ते वृषभानुजासरसिके कर्त्तुं स्तवं मन्दधी-
रद्य प्रारभते जनोऽयमभितो निर्वाहयामुं स्वकम् ॥१७॥

मनोहर हँसती हुईं हाथों से भ्रमरों का निवारण किया तो उस समय भ्रमरावली गन्ध से परिपूर्ण माधवीलता में बैठ गयीं तथा श्रीकृष्ण परम प्रसन्नता को प्राप्त हुये। राधाकुण्ड जलविहारी वे नन्दनन्दन श्रीहरि हम सब निज जनों की रक्षा करें ॥१५॥

जिसके मनोहर निकुंजपुंज में विराजमान होकर अगाध रूप तथा अनुपम अमित गुणों से परिपूर्ण श्रीराधिका के सहित श्रीगोपेन्द्र-नन्दन, गोपियों के द्वारा रस से उन्मादित होकर विजय को प्राप्त हो रहे हैं वह श्रीवृन्दाबन निरन्तर सुखों का प्रदान करे ॥१६॥

अब ग्रन्थकार निज ध्येय श्रीराधाकुण्ड स्तव का प्रारम्भिक वर्णन करते हैं। जिसके लावण्यातिशय का दर्शन करके गुणियों के सिरोमणि ब्रजराजनन्दन स्वयं उन्मत्त होकर मस्तक हिलाते हुए बारम्बार विस्मित हो जाते है, ऐसे जो तुम हो, तुम्हारा हे राधिका-सरोवर ! आज यह मन्दमति स्तव करने के लिये प्रारम्भ कर रहा है। अतः तुम स्वयं ही इसका निर्वाह करो ॥१७॥

श्रीराधासरसि त्वदीयमहिमा नास्मादृशां गोचर-
स्त्वत्कारुण्यबलेन साहसमहं कुर्व्वे तथाप्यूहतः ।
तत्त्वं कारय चित्रसंस्तवमिमं स्वीयं निजेशां सदा
गान्धर्व्वां मम चित्तकन्दरतटे वात्सल्यतः प्रापय ॥१८॥

कृष्णक्रीडितरंजिताखिलपदा वैदूर्य्यहीरादिभिः
सोपानेषु विभूषिता विरचितानन्दा व्रजप्रेयसः ।
आलीपुंजनिकुञ्जवृन्दवलिता नालीकसंराजिता
श्रीराधानलिनी निलीनमनसो नन्दात्मजे नः क्रियात् ॥१९॥

श्रीगोपालवरेण्यपालमभितः सत्कुंजजालश्रिया
युक्तं तालमुखद्रुमालिलसितं वृन्दादिकालिप्रियम् ।

हे श्रीराधिकासरसि ! तुम्हारी महिमा हम सब के अगोचर है तौ भी तुम्हारी करुणा के बल से हम इस प्रकार साहस कर रहे हैं । इसका समाधान तुम स्वयं करो । एक कृपा और भी करो । तुम अपनी वात्सल्यता के द्वारा निज स्वामिनी श्रीराधिकाजी को मेरे चित्त-कन्दरा के तट में विराजमान करा दो । जिससे हम समर्थ होकर तुम्हारे इस कार्य्य को कर सकें ॥१८॥

सर्व्वत्र श्रीकृष्णक्रीडाओं से परिरञ्जिता, वैदूर्य्यमणि-हीरादि विविध रत्नों से जटित सीढ़ियों से विभूषिता, व्रजप्रिय श्रीकृष्ण को आनन्द देने वाली, सखियों के निकुंज समूह से परिवेष्टिता, कमलावली से शोभायमाना श्रीराधिकासरसी हम सबको नन्दनन्दन में मग्नचित्त करे ॥१९॥

श्रीगोपराजनन्दन के द्वारा संरक्षित, मनोहर कुंजों की शोभा से शोभित, ताल-तमालादि वृक्षावली से उल्लसित, वृन्दादिक सखियों का परमप्रिय श्रीराधाकुण्ड, तुम सब की रक्षा करें । जिसके

सोपानावलिलग्नचन्द्रमणिजै र्नीरैर्विधोरुद्गमे
सानन्दं मिलदूर्म्मिमालकमलं कुण्डं सदा पातु वः ॥२०॥
ब्रह्मेन्द्रप्रमुखैः सुरेशनिचयै र्यस्याः सरस्या ध्रुवं
नो गम्यो महिमाऽस्ति मादृशनरप्रार्थ्येक्षणायाः सदा।
वृन्दारण्यपुरन्दरोऽपि सुदरो गान्धर्व्विकाज्ञां विना
किञ्चिद्धन्त निजेच्छया न कुरुते यत्रैव सा पातु वः ॥२१॥
गोविन्दस्य विलासकौतुकभराद्गुप्तस्य यस्या गृहे
श्रीवृन्दाविपिनेश्वरी व्रजविधोरन्वेषणं कुर्व्वती।

चार ओर सीढ़ियों में चन्द्रकान्तमणि जड़े हुए हैं। चन्द्रमा के उदय होने पर वे सब पिघल कर जल बनकर कुण्ड में गिरने लगते हैं, अतः उन जलों से श्रीकुण्ड परम मनोहरता को धारण कर लेता है। फिर जल उछल कर तरंग रूप से कमलों का स्पर्श कर लेता है ॥२०॥

जिस सरोवर की महामहिमा को ब्रह्मा-इन्द्रादि प्रधान श्रेष्ठ देवतागण नहीं जानते हैं उस राधा सरोवर के दर्शन के लिये मुझ जैसा क्षुद्रजन प्रार्थना करता है यह अत्यन्त धृष्टता है। परन्तु श्रीसरोवर की कृपा ही परम सम्वल होकर इस प्रार्थना को पूर्ण कर देती है। अहो सरोवर की महिमा अति अद्भुत है। वृन्दावन के पुरन्दर स्वयं नन्दनन्दन ही राधिका के आदेश के विना अपनी इच्छा से इस सरोवर में कुछ नहीं कर सकते हैं अर्थात् उसमें उनका कोई स्वतन्त्र अधिकार नहीं है। इस प्रकार महिमा वाला राधा सरोवर तुम सब की रक्षा करें ॥२१॥

वह राधिका सरोवर हम सब की निरन्तर रक्षा करें। जिसके गृहों में कौतुक के वश छिप जाने वाले श्रीगोविन्द को वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिका ढूँढ़ती रहती हैं तथा व्रजचन्द्र प्राणवल्लभ को देखने पर भी

दृष्ट्वाऽपि प्रियमास्थितं सुललितं संनिश्चलाङ्गं नहि
ज्ञातुं शक्तियुता वभूव सरसी सा पातु नः प्रत्यहम् ॥२२॥
धर्म्माधर्म्मविनिर्णयेषु निपुणाः कुर्व्वन्तु धर्म्मं नराः
केचित् संकलयन्तु योगमपरे ब्रह्मस्वरूपे मनः ।
अन्ये भक्तिसुखानुभूतिजनितामोदा भवन्तु स्फुटं
नान्यद्वाञ्छति मे मनस्तु सरसीं श्रीराधिकाया विना ॥२३।
श्रीराधासरसीगुणैस्तु रसना भूयात्सदालंकृता
तामेवानिशमुद्भट-प्रणयतश्चित्तं मम ध्यायतु ।
शीर्षं मे कुरुतां प्रणामविततिं तस्यां सुदैन्यावृतां
कर्णौ संशृणुतां मम प्रतिदिनं तस्यां भृशं संस्तुतिम् ॥२४॥

उन्हें नहीं पँहचानती हैं। क्योंकि श्रीहरि निश्चल शरीर होकर वहाँ इस प्रकार बैठ जाते हैं कि उन्हें कोई नहीं पहिचान सकता है। यह तो कुण्ड की अद्भुत बनावट है ॥२२॥

धर्म्म-अधर्म्म निर्णय करने में परम निपुण जन धर्म्म साधन में तत्पर रहें, कोई योगसाधन करते रहें, और कोई मन को ब्रह्मस्वरूप में लगाते रहें, और कोई भाग्यवान् भक्तिसुख का ही स्पष्ट अनुभव करते हुए परम प्रसन्नता का लाभ करते रहें। परन्तु इन बातों में मेरी किञ्चित मात्र भी आस्था नहीं है। मेरा मन तो श्रीराधिका के सरोवर के बिना अन्य कुछ नहीं चाहता है ॥२३॥

मेरी रसना निरन्तर श्रीराधासरोवर के गुणों से अलंकृत रहैं अर्थात् सर्व्वदा राधाकुण्ड के गुणों का कीर्त्तन किया करे। मेरा चित्त उद्भट प्रणय के साथ निरन्तर राधासरोवर का ही ध्यान किया करे, मस्तक अत्यन्त दीनता के साथ उसके लिये प्रणाम समूह को किया करे तथा दोनों कर्ण प्रतिदिन उसी की स्तुति का श्रवण किया करे ॥२४

दुष्टं मां विषयैर्हृतेन्द्रियगणं शश्वत्प्रलोभातुरं
कामेनाकुलमानसं प्रतिलवं क्रोधाग्निना पूरितम् ।
कृष्णप्रेमपराङ्मुखं यदि हहा वृन्दावनेशासरो
हन्त त्वं समुपेक्षितासि भविता का तर्हि मेऽन्या गतिः ॥२५॥

गायन् श्रीवृषभानुजावरगुणान्प्रेमार्त्तिभिः कीर्त्तयन्
गोष्ठाधीशकुमारमग्नहृदयो रोमाञ्चपुञ्जाञ्चितः ।
औन्मुख्यं विषये त्यजन् वसति यः कुण्डे नरः सन्ततं
राधादास्यरसं ददाति हि निजं तस्मै मुकुन्दान्विता ॥२६॥

अन्योपास्तिपरा नरा जगति ये हन्त भ्रमन्ति भ्रमात्
तान् स्मृत्वा मम मानसं नहि कदाप्याप्नोति खेदं खलु ।
श्रीराधापदपद्मदास्यरसिकोऽप्यन्यत्र कुण्डादृते
प्रीतिं यः कुरुते तमेव पुरुषं जाने निजार्थच्छिद्रम् ॥२७॥

हे वृन्दावनेश्वरी के सरोवर ! यदि तुम विषयों से हृत इन्द्रिय-वाले, दुष्ट, निरन्तर नाना प्रलोभनों में आतुर, काम से व्याकुलचित्त वाले, सर्व्वदा क्रोधाग्नि से जर्जरित, कृष्णप्रेम में पराङ्मुख हमें उपेक्षित कर रहे हो तब हाय हाय ! मेरी और क्या गति होगी ? अथवा तो तब भी तुमको छोड़कर मेरी अन्य गति है ही क्या है ?॥२५

जो मनुष्य श्रीवृषभानुनन्दिनी के श्रेष्ठ गुणों का प्रेमातुरता के साथ कीर्त्तन करता हुआ गोपराजनन्दन में मग्न हृदय तथा रोमान्च पुंज से भूषित होकर तथा विषय में आसक्ति को छोड़ कर निरन्तर राधाकुंड में वास करता है, उसे श्रीराधिका मुकुन्द के साथ अवश्य अपने दास्यरस को प्रदान करती हैं ॥२६॥

इस जगत् में बहुत से मनुष्य औरों की उपासना करते हुए भ्रम से भ्रमण करते फिरते हैं । उनका स्मरण करके मेरा मन कभी भी

राधादास्यरसाभिलाषसहितं चेन्मानसं मानवा-
स्तर्हि श्रीवृषभानुजासरसिका वासं कुरुध्वं न किम् ।
स्नेहेनात्रकलेवरे पदवरे युष्माभिरायाति ते
श्रीवृन्दाविपिनेश्वरी सुकरुणा पूर्णा ध्रुवं भाविनी ॥२८॥

राधाकुण्ड सकुण्ड एव भवतो रम्यां स्तुतिं यो नरः
श्रुत्वा नन्दितमानसो नहि भृशं स्वीयं शिरो धूनयेत् ।
यस्त्वद्वासिषु दोषदृष्टिमसकृत्कुर्व्वीत हा तेन तु
व्यर्थं क्लेशभरो व्यधापि जननीकुक्षेः किमर्थं किल ॥२९॥

गान्धर्व्वासरसि त्वयि श्रुतिशिरोमृग्याः स्रवन्ति स्फुटं
सत्प्रेमामृतसागराः खलु सदा चित्रं सुसंख्यातिगाः ।

खेद को प्राप्त नहीं होता है। परन्तु राधा के पादपद्मदास्य में रसिक जो व्यक्ति राधाकुण्ड को छोड़कर अन्यत्र अत्यन्त प्रेम करता है उस मनुष्य के लिये ही मुझे अत्यन्त खेद रहता है। क्योंकि वह अपने स्वार्थ का छेदन करने वाला है ॥२७॥

हे मानवगण ! यदि श्रीराधादास्य रस में अभिषिक्त होने के लिये मन में इच्छा है तब श्रीवृषभानुनन्दिनी की सरसी में क्यों नहीं वास करते हो। यदि राधाकुण्ड में प्रीति के साथ वास कर सकते तो अवश्य इसी शरीर में श्रीराधिका दर्शन देंगी तथा भविष्य में उनकी पूर्ण करुणा होगी ॥२८॥

हे राधाकुण्ड ! तुम्हारी मनोहर स्तुति को सुन कर जो मनुष्य प्रसन्न हृदय होकर बारम्बार अपने मस्तक को नहीं हिलाया है तथा जो तुम्हारे तट में वास करने वाले मनुष्यों में बारम्बार दोष दृष्टि करता रहता है, हाय ! उसने वृथा ही मातृगर्भ में जन्म लिया है ॥२९॥

हे माते ! राधिकासरसि ! तुम में निरन्तर उपनिषद् मृग्य असंख्य सत्प्रेमामृत समुद्र विचित्ररूप से बहते रहते हैं। उनसे समस्त

तेषां पूरयतां समस्तपृथिवीं! माधुर्य्यलेशोऽपि मे
स्वीयस्योपरि नापतज्जननि ते किं युक्तमेतत्तव ॥३०॥

वृन्दारण्यविलासिनीनलिनि ते कारुण्यमत्यद्भुतं
श्रुत्वा नीचतमोऽपि धार्ष्ट्यवलितो वासं त्वयि प्रार्थये।
त्वं चेन्निर्घृणतां करोष्यह हहा श्रीराधिकामानिते
मातस्तर्हि गतिर्हि नास्ति जगति क्वापीति मन्ये ध्रुवम् ॥३१॥

श्रीराधानलिनि स्वकीयकरुणां कर्त्तुं न चेदिच्छसि
वासं गौरवमेव मन्मनसि किं सर्व्वाधिकं स्वं त्वया।
तत्वं मां निखिलाधमाधियमपि स्वान्तेऽभिमानावृतं
गेहे पर्णकृते तटे विरचिते मातः सुखं वासय ॥३२॥

पृथिवी प्लावित हो गयी है। परन्तु हाय! निजजन मुझ में माधुर्य्य का लेश मात्र भी पतित नहीं हुआ है। अर्थात् मैं उस माधुर्य्यलेश से वञ्चित रहा। ऐसा तुम्हारे लिये उचित नहीं है ॥३०॥

हे वृन्दावनविलासिनी श्रीराधिका की सरसि! तुम्हारी करुणा अत्यद्भुत है ऐसा सुन कर नीच से भी नीच मैं धृष्टता के साथ तुम में वास की प्रार्थना कर रहा हूँ। हे राधिका के द्वारा सन्मानित माते राधासरसि! यदि तुम दया नहीं करती हो तो फिर इस जगत् में कहीं भी मेरी गति नहीं है ऐसा निश्चय है ॥३१॥

हे राधिकासरसि! यदि तुम अपनी करुणा को नहीं करना चाहती हो तो "तुम में वास करना ही परम गौरव का विषय है" ऐसा सर्व्वाधिक सिद्धान्त ही हमारे मन में क्यों उदय कराती हो? राधाकुण्डवास ही सर्व्वोपरि है केवल यह मेरी धारणा मात्र क्या कर सकती है? अतः हे मात! अधम से अधम बुद्धिवाला, अभिमान से आवृत हृदय वाला मुझ को अपने तट पर पर्णकुटी में सुख के साथ वास दीजिये ॥३२॥

गान्धर्व्वाङ्घ्रिसरोजदास्यजलधौ मग्नान्व्रजेन्दुप्रियान्
आर्यान् स्वीयतटे निवासयसि यत् किं तत्र चित्रं महत् ।
नीचं मूढ़तमं भवे निपतितं दीनं विषादातुरं
मामंगीकुरुषे यदा तव दयां मन्ये तदाहं सरः ॥३३॥

श्रीगोपेन्द्रतनूजपूजनविधिं स्वान्तातिदोषापहं
जाने नाहमपारदुःखनिवहैः संसारजातैर्वृतः ।
तद्दीनं परिलोक्य मां विरहितं भक्त्या हरेः स्वे तटे
वासं देहि रसं निकुञ्जरमणप्रेम्णः सुविस्तारय ॥३४॥

तत्रत्यान्पशुपक्षिवृक्षनिचयान् सर्व्वांस्तथा मानवान्
श्रीराधापरिवारचिद्घनतनून् संचिन्तयन्नादरात् ।

हे सरोवर ! जो तुम राधिका चरण कमल के दास्यसागर में निमग्न, व्रजेन्द्रनन्दन के प्रियजनों को अपने तट पर निवास कराते हो, इस में तुम्हारी क्या महान् आश्चर्य्यता है अर्थात् कुछ नहीं है । हाँ यदि नीच, अत्यन्त मूढ़, संसार में पतित, दीन, विषाद से आतुर मुझ को जब अंगीकार करो तब ही तुम्हारी दया समझूँ ॥३३॥

हे राधाकुण्ड ! मैं संसार में उत्पन्न होकर अनन्त दुःखों से आवृत होकर हृदय के अनन्त दोषों के नाशक, व्रजराजनन्दन की पूजाविधि को नहीं जानता हूँ । अतः मुझको दीन जानकर हरिभक्ति युक्त अपने तट में वास दीजिये तथा मेरे हृदय में निकुंज विलासमय प्रेमरस का विस्तार कीजिये ॥३४॥

मैं कब प्रेम के साथ वृषभानुनन्दिनी की सरसी में वास करूँगा तथा वहाँ के पशु-पक्षी-वृक्ष समूह तथा समस्त मनुष्यों को श्रीराधा परिवार और चिद्घनशरीर रूप में समझ कर आदर पूर्व्वक चिन्तवन

गोपालेन्द्रतनूजपूजनरतः प्रीतान्तरोऽहर्निशं
कुर्व्वे श्रीवृषभानुजासरसिकावासं कदा प्रेमतः ॥३५॥

गेहं पुत्रेषु तृष्णां स्वजनधनकलत्रेषु च स्नेहबन्धं
छित्वा त्यक्ताखिलेहो व्रजपतितनयं गायमानः प्रमोदात्।
श्रीराधापादपद्मं प्रणयरसभराच्चिन्तयन् चित्तमध्ये
तीरे कृत्वा निकेतं किशलयरचितं कुण्डवासी कदा स्याम् ॥३६॥

नीरान्तः प्रतिबिम्बितां सुललितां वृक्षाटवीं सर्व्वतः
प्रेक्ष्य प्रीतिभरेण वल्लवकुलाधीशात्मज-स्फूर्त्तितः।
स्वप्राणान्परविस्मयाञ्चितमतिर्निमञ्छनीकृत्य किं
सोपानेषु लुठामि कुण्ड भवतः प्रेमाश्रुधाराङ्कितः ॥३७॥

करता हुआ अहर्निश गोपेन्द्रनन्दन की पूजा में रत होकर कृतार्थ होऊँगा ॥३५॥

कब मैं गृह-पुत्र-कलत्र में तृष्णा के तथा निजजन-धन कुटुम्ब में स्नेह के बन्धन को छिन्न करके समस्त चेष्टाओं से रहित होकर आनन्द पूर्व्वक व्रजराजनन्दन का गान करता हुआ तथा प्रणयरस से भरपूर होकर श्रीराधा के पादपद्मों का मन में चिन्तन करता हुआ कुण्ड के तट पर किसलयों से पर्णकुटी बनाकर कुण्डवासी बनूँगा ? ॥३६॥

हे राधाकुण्ड ! कब मैं जल में प्रतिबिम्बित मनोहर वृक्षों को गोपकुलेश्वर व्रजराजनन्दन की स्फूर्त्ति मान से प्रीतिपूर्व्वक देखता हुआ तथा औरों को विस्मित करता हुआ अपने प्राणों को न्यौछावर करता हुआ आपकी सीढ़ियों में प्रेमाश्रुधारा का वर्षण के साथ लोट पोट हूँगा ? ॥३७॥

गोपेन्द्रात्मजमंसदेशमिलितश्रीराधिकाग्रीवकं
स्मृत्वाश्रूणि वहन्तमन्तरगतप्रेमार्त्तिरोमाञ्चितम् ।
मामालोक्य तटे लुठन्तमसकृन्नामोद्गिरन्तं हरेः
कारुण्यात्खलु दर्शयिष्यति कदा स्वीयस्वरूपं सरः ॥३८॥

श्रीगोष्ठेन्द्रसखात्मजाविरचितक्रीडासमूहैर्वृतं
गान्धर्व्वाप्रणयान्धगोकुलविधोरानन्दछन्दप्रदम् ।
माधुर्य्यामृतपूरमद्भुततमं सम्यक् सदैवोद्गिर-
च्छ्रीवृन्दाविपिनान्तरङ्गसुखदं भूयात् कदा मे सरः ॥३९॥

जेतुं शक्नोति मायां परुषमतिरुषा कुर्व्वतीं नर्त्तनं कः
शीर्षे घातैः पदानां हरिभजनविधावन्तरायप्रदात्रीम् ।
तद्गान्धर्व्वासरस्ते मुहुरतिविकलः संश्रयं हन्त कुर्व्वे
श्रीमद्वृन्दावनेशाव्रजपतितनयौ स्फोरयान्तः कृपातः ॥४०॥

गोपराजनन्दन के स्कन्ध देश से संलग्न श्रीराधिका के ग्रीवाभाग का स्मरण कर अश्रुधारा को बहाने वाले, हृदयवर्त्ति प्रेमातुरता से रोमाञ्चित, बारम्बार श्रीहरि के नामों को ले लेकर तट पर लोट पोट होते हुये मुझ को देख कर कब श्रीराधासरोवर करुणार्द्र होकर अपने स्वरूप का दर्शन करायेगा ॥३८॥

श्रीवृषभानुनन्दिनी के द्वारा विरचित क्रीड़ा समूह से व्याप्त, राधिका के प्रेम में उन्मदान्ध, गोकुलचन्द्रमा को आनन्द प्रदान करने वाला श्रीराधासरोवर कब मेरे लिये वृन्दाबनसम्बन्धी अन्तरंग सुख का प्रदान करेगा ॥३९॥

हरिभजनविधि में बाधा डारने वाली, शिर पर पाँवों को रखकर उद्दण्ड नृत्यशीला, मायादेवी को कौन जीत सकता है ? अतः हे राधिकासरोवर ! मैंने अत्यन्त व्याकुल होकर तुम्हारा आश्रय लिया

प्रौढं मे वृषभानुवंशजमणेः श्रीमत्सरस्या वलं
जाने नान्यदहं मनागिति सदा गूढाभिमानं भजे ।
त्वं चेन्नादिशसि स्वकीयसुतटे वासं मुकुन्दप्रिये
मातस्तर्हि भविष्यति त्वयि न किं लज्जास्पदं खल्विदम् ॥४१॥

किं धर्म्मेण ममास्ति कृत्यमिह किं योगेन किं सद्गुणैः
किं मे ब्रह्मसुखेन किं मधुरिपोर्ध्यानादिनाप्यद्य च ।
श्रीवृन्दाविपिनेश्वरीसरसिकागर्वेण न क्वापि मे
चित्तं कुण्डरसामृताम्बुधिभृतं सज्जत्यतीवोन्मदम् ॥४२॥

वृन्दारण्यविलासिनी तव मुदा कुञ्जेषु नन्दात्मजं
रम्यैर्हासविलासभावनिचयैः संमोहयत्यन्वहम् : ।

है । तुम अपनी करुणा के द्वारा श्रीवृन्दावनेश्वरी तथा व्रजराजनन्दन को हृदय में स्फूर्त्ति कराओ ॥४०॥

वृषभानुवंश की मणिस्वरूपा श्रीराधिका की सरसी ही मेरा प्रौढ़ वल है । मैं लेशमात्र भी अन्य कुछ नहीं जानता हूँ तथा तुम्हारा ही अभिमान के साथ भजन करता हूँ । हे सरसि ! तुम यदि अपने तट पर वास नहीं देती हो तो हे मुकुन्दप्रिये ! हे मात ! क्या यह तुम में लज्जा की वात नहीं है ? ॥४१॥

मेरे धर्म्मसाधन में क्या रक्खा है । नित्यकृत्य भी अति तुच्छ है । योगादि साधना तथा सद्गुणों से मेरा क्या होगा ? ब्रह्मसुख को भी मेरा हृदय नहीं चाहता है । अधिक तो क्या मुरारी के ध्यानादि से भी इष्ट सिद्धि नहीं हो सकती है । वृन्दावनेश्वरी की सरसी के अभिमान में मग्न मेरा चित्त अन्यत्र नहीं जा सकता है । चित्त तो अत्यन्त उन्मत्त होकर कुंड के रसामृत-समुद्र का पान कर रहा है ॥४२॥

हे वृषभानुनन्दिनी की सरसी ! वृन्दावन-विलासिनी श्रीराधा आनन्द के साथ तुम्हारे कुन्जों में मनोहर हास्यविलासमय भावों के

तन्मां त्वं कुरु राधिकापदयुगे दास्याधिकारोत्सवैः
पूर्णं श्रीवृषभानुजासरसिके मा स्वाश्रितं संत्यज ॥४३॥

कृष्णांघ्र्यम्बुजसीधुमत्तहृदयास्त्वद्वासससक्तान्तराः
के वापुर्नहि राधिकापदयुगं मृग्यं तु वेदैरपि ।
तद्वृन्दाविपिनेश्वरीसरसिके स्वीयाश्रयस्यापि मे
दीनस्योद्धरणे भविष्यति कियान् भारः प्रपन्नप्रिये ॥४४॥

श्रीकुण्डाश्रयवन्तमन्तरलसत्प्रेमाणमत्यादरात्
लोकेशाः प्रणमन्ति पद्मजमुखा हित्वाभिमानं निजम् ।
अन्यत् किं व्रजराजनन्दनशिरोलग्नांघ्रिसद्यावकां
गान्धर्व्वासरसीरसी किल वशीकुर्व्वीत राधामपि ॥४५॥

द्वारा नन्दनन्दन को निरन्तर संमोहित करती हैं। अतः तुम मुझको राधिका के चरणयुगल में दास्याधिकार रूप उत्सव से पूर्ण करो। निजाश्रित मुझे मत त्याग करो ॥४३॥

हे बृन्दावनेश्वरी का सरोवर ! श्रीकृष्ण के चरण कमल मधुपान से मत्तहृदय वाला, तुम्हारे तट पर वास करने में महान् आसक्त चित्त वाला कौन मनुष्य बेदों से मृग्य राधिकाचरण युगल का प्राप्त नहीं करता है ? अतः निजाश्रित इस दीन के उद्धार में तुम्हें क्या भार हो सकता है ? तुम तो प्रपन्नजन के परम प्रिय हो ॥४४॥

जो अत्यन्त आदर से हृदय में प्रेमोल्लास के साथ श्रीकुंड का आश्रय करता है वह परम भाग्यवान् है। ब्रह्मादि लोकपाल देवतागण भी निज अभिमान को छोड़ कर उसको प्रणाम करते हैं। अधिक क्या कहूँ-ब्रजराजनन्दन के मस्तक पर अपने चरणों का महावर लगाने वाली श्रीराधिका को भी कुंडवासी अपने वश में कर लेता है ॥४५॥

किं कृष्णस्यैव रूपं त्रिभुवनमनसो हारि किं यूथपायाः
प्रेमामूर्त्तः किमीष्टे किमु विजयते केलिरेवानयो र्वा ।
इत्थं यत्रैव राधा प्रणयसहचरी संचयामोदवृन्दाद्
वंभ्रम्यन्ते सुरम्यां प्रणमत सरसीं तां महद्भिः सुनम्याम् ॥४६॥

श्रीवृन्दाविपिनेश्वरीहृदिगतं प्रेमैव कुण्डच्छलात्
मन्ये प्रास्रवदन्तरेऽपरिमितं वृद्धं भृशं निर्गतम् ।
यद्गोपालवरेण्यसूनुसहितान् सर्व्वान् स्वशोभाचयै-
र्मूर्च्छां प्रापयति प्रमोदसुधया कृत्वा किल क्षालितान् ॥४७॥
छिन्धि स्नेहमिमं गृहेषु रुदतः स्त्रीपुत्रमित्रादिकान्
वन्धून् संत्यज विस्मर प्रिय मनः शास्त्रेषु सर्व्वज्ञताम् ।

अहो ! श्रीराधासरोवर का कैसा अद्भुत स्वरूप है । क्या त्रिभुवन मनोहारी श्रीकृष्ण का रूप ही कुंड रूप में विराजमान है ? अथवा यूथेश्वरी राधिका का प्रेम ही मूर्त्तिमान हो कुंड रूप में शोभायमान है ? अथवा दोनों की क्रीड़ा ही विजय को प्राप्त हो रही है ? इस प्रकार शंका करती हुईं अतिशय आमोद के कारण राधिका की प्रणय-सखियाँ जहाँ भ्रान्त होकर घूमती रहती हैं, महद्जनों के भी अत्यन्त नमस्कार योग्य उस मनोहर राधासरोवर के लिये प्रणाम करो ॥४६॥

मेरे मन में ऐसी धारणा है कि—मानो बृषभानुनन्दिनी के हृदयस्थ प्रेम ही कुंड के छल से स्रवमान हो रहा है । वह अपरिमित रूप से बढ़ कर बाहर निकल रहा है । जिससे गोपराजनन्दन के सहित सबको अपनी शोभा समूह के द्वारा मूर्च्छित कराकर फिर प्रमोदसुधा के द्वारा धौत कर रहा है ॥४७॥

गृह के प्रति स्नेह-बन्धन का छेदन करो । रोने वाले स्त्री-पुत्र-मित्रादि बन्धुओं का त्याग करो । अरे प्रियमन ! शास्त्रों में अपनी सर्व्व-ज्ञाता का जो अभिमान है उसे भूल जाओ । बृन्दावनविलासी राधा-

बृन्दारण्यविलासिपादनलिनप्रेमामृतानन्ददं
नित्यं त्वं परिचिन्तयातिललितं श्रीराधिकायाः सरः ॥४८॥

भ्रंसिन्या व्रजराजनन्दनपदप्रेम्णः स्त्रिया रे मनः
स्नेहेनारचितैः सुनर्मनिचयैर्मा वञ्चनां प्राप्नुहि ।
नैवाकांक्षय पुत्रमित्रविभवानालोचयन्नश्वरान्
ध्याय त्वं बृषभानुजासरसिकां श्रीराधिकादास्यदाम् ॥४९॥

यत्कुञ्जेषु निजालिभिः परिवृता मध्यान्हकाले सदा
श्रीराधा व्रजराजनन्दनयुता क्रीडार्थमागच्छति ।
आश्चर्यं नवनागरोऽपि कलनादाप्नोति यस्य श्रिय-
स्तच्छ्रीमद्वृषभानुजाप्रियतमं कुण्डं ममास्तां गतिः ॥५०॥

यस्मिन्मामकमेव सत्पदमिति श्रीराधिकाया भृशं
गूढाहंकृतिरन्वहं विलसति प्रेम्णायुताया हृदि ।

गोविन्द के चरण कमल के प्रेमामृत को देने वाला मनोहर राधासरोवर का नित्य चिन्तन करो ॥४८॥

अरे मन ! व्रजराजनन्दन के चरण कमलों के प्रेमधन को नष्ट कर देने वाली स्त्रियों के परिहासमय स्नेह वचनों में फँस कर प्रेमधन से वञ्चित मत हो । पुत्र-मित्र-वैभवों को नश्वर जान कर उनकी आकांक्षा मत करो । निरन्तर राधादास्य प्रदानकारी बृषभानुनन्दिनी सरसी का ध्यान करो ॥४९॥

जिनके कुंजों में मध्यान्ह के समय निज सखियों से घिरकर व्रजराजनन्दन के साथ श्रीराधिका नित्यप्रति क्रीड़ा करने के लिये आती हैं तथा नवनागर श्रीकृष्ण भी जिसका दर्शन कर आश्चर्य को प्राप्त होते हैं वह श्रीवृषभानुनन्दिनी का अत्यन्त प्रिय श्रीकुंड ही मेरी गति होवे ॥ ५० ॥

चित्राणां रचनाकृता सुविलसत्कुञ्जेषु यस्यालिभि-
स्तत्कुण्डं वृषभानुजाव्रजविधुप्रीत्यास्पदं मे गतिः ॥५१॥

यत्कुञ्जेषु सुनन्दितौ परिलसद्वृन्दादिकालीगणौ
राधागोकुलनागरौ गलगतोद्बाहू मुदा क्रीडतः ।
तद्वृन्दावनधामवाममनिशं सोपानकैर्मण्डितं
यूनोः केलिचयैरलंकृतमलं कुण्डं सदा मे गतिः ॥५२॥

कुर्वाते जलकेलिमद्भुततमां यस्यां मुदा राधिका-
गोपालेन्द्रसुतौ स्वगोपनकरावब्जैः सुपीतासितैः ।
मग्नैः प्रेमरसाम्बुधौ सुमुदितैरालीसमूहैर्युतौ
तस्या हंत समाश्रयो भवतु मे श्रीमत्सरस्याः सदा ॥५३॥

जिसके लिये "यह मेरा सर्वोपरि स्थान है" ऐसा गूढ़ाभिमान, प्रेममयी राधिका के हृदय में विराजमान रहता है, जिसके कुंजों में राधिका की सखियाँ भी नाना प्रकार के चित्रों की विचित्र रचना करती हैं, वृषभानुनन्दिनी-व्रजचन्द्रमा के प्रीति का विषय वह श्री-राधाकुण्ड मेरी गति स्वरूप होवें ॥५१॥

जिस के कुन्जों में चारों ओर शोभायमाना वृन्दादिक सखियों के साथ आनन्दित हो राधा गोकुलनागर परस्पर गलबाँह दे कर क्रीड़ा करते हैं तथा वृन्दावन धाम में मनोहर, सीढ़ियों से मण्डित, दोनों के केलिसमूह से अलंकृत वह श्रीकुण्ड सर्वदा मेरी गति होंवे ॥५२॥

जिस में राधा-गोपेन्द्रनन्दन आनन्द के साथ अद्भुत से अद्भुत जलविहार करते हुए, पीत-नील कमलवन के बीच में छिप जाते हैं तथा सखियों के साथ प्रेमरस समुद्र में डूब जाते हैं वह श्रीमत् राधा-सरोवर मेरा आश्रय होंवे ॥५३॥

हस्ताभ्यां परिगृह्य नीरममलं संपातयन्तौ मिथः
श्रीराधाव्रजमानवेशतनयौ लग्नार्द्रवस्त्रावृतौ ।
अङ्गेभ्यः परितः प्रसर्पितरुची विक्रीडतो यज्जले
सा श्रीमत्सरसी ममास्तु शरणं गान्धर्व्विकासेविनः ॥५४॥

नीरे यस्य निमज्य नन्दतनयो राधापदाम्भोरुहे
संगृह्याकुलमानसां प्रणयतः कुर्व्वन् भयेन प्रियाम् ।
उन्मज्याथ सुहासयन् विहरति प्रेयान् कुरङ्गीदृशां
कुण्डं तद्विमलं गति र्भवतु मे गान्धर्व्विकायाः सदा ॥५५॥

यन्नीरान्तरगानि पङ्कजकुलान्यादाय नालेषु तौ
वृन्दारण्यविलासिनीव्रजविधू संताडयन्तौ मिथः ।
नित्यं हन्त मुदा महाकुतुकिनौ भातो यदीये तटे
तां राधासरसीं नतोऽस्मि सततं गान्धर्व्विकाप्राप्तये ॥५६॥

जिस में राधा-व्रजराजनन्दन अपने हाथों में पवित्र जल लेकर परस्पर के प्रति फेंकने लगते हैं तथा भीजे वस्त्रों से आवृत होकर जल-क्रीड़ा करते हैं, उस समय उनके अंगों से कान्तिलहरी छिटकर चार ओर फैल जाती है, वह श्रीमत् राधासरोवर ही मुझ राधिका सेवापरायण के लिये शरण है ॥५४॥

जिस के जल में नन्दनन्दन डूब कर राधिका के चरण कमलों का धारण करते हुए उन को भय भीत करके व्याकुल कर देते हैं, फिर प्रिय श्रीकृष्ण जल के भीतर से निकल कर गोपांगनाओं को हँसाते हुए राधिका के साथ विहार करते हैं, वह विमल श्रीराधाकुण्ड मेरी गति होवे ॥५५॥

जिसके जल में वर्त्तमान कमलों को लेकर श्रीराधा-व्रजराजनन्दन उनके नालों के द्वारा परस्पर-परस्पर की ताड़ना करते हैं तथा दोनों

यस्यां गोपमहेन्द्रनन्दतनयः कैवर्त्तकः स्नेहतो
नावं चालयति प्रियां सुवदनां पश्यन्हसन्नर्म्मभिः ।
तां श्रीमद्वृषभानुजाभिलषितां कुञ्जैरनन्तैर्वृतां
श्रीराधा–सरसीं कदा पुलकितः स्यां प्रेक्ष्य नीचोऽप्यहम् ।।५७।।

कोणस्थः शिखरद्युतेः सुतरणेर्नन्दात्मजः प्रेयसीं
श्रीवृन्दाविपिनेश्वरीं प्रणयतः संभीषयन्नाविकः ।
यस्यां केलिकुलं करोति मुदितो राधामुखालोकनात्
सा राधासरसी मयि प्रतनुतां कैंकर्य्यमात्मेशयोः ।।५८।।

यस्मिन् केलिनिकुंजवैभवभरं प्रेक्ष्याभिमानांचिता
त्वं मद्धामगतां समृद्धिमतुलां पश्येत्क्षणानन्ददाम् ।

महान् कौतुक के साथ जिस के तट पर नित्य विराजमान रहते हैं उस राधासरोवर को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ कि जिस से शीघ्र ही राधिका की प्राप्ति हो सकती है ।।५६।।

जिस में गोपराजनन्द के तनय श्रीकृष्ण, सुमुखी प्रियाजी को देखते हुए तथा नर्म्म परिहास के द्वारा हँसते हुए स्नेह से माझी बन कर नाव चलाते हैं, उस वृषभानुनन्दिनी के द्वार अभिलषित, अनन्त कुन्जों से आवृत, श्रीराधासरसी का अवलोकन कर नीच मैं कब पुलकायमान हो जाऊँगा ।।५७।।

पर्व्वत शिखर की भाँति चमकने वाले, नाव के एक कोने में मल्लाह रूप से बैठते हुए श्रीनन्दनन्दन, प्रिया वृन्दावनेश्वरी को प्रणय के साथ डराते हुए उन के मुख कमल के दर्शन से प्रसन्न होकर विविध क्रीडा विनोद करते रहते हैं वह श्रीराधासरसी मेरे प्राणाधार युगल में कैंकर्य्यता का विस्तार करें ।।५८।।

जिस के केलिनिकुंजों के वैभव विस्तार का दर्शन कर श्रीराधिका गर्व्ववती होकर "आप मेरे धाम के नयनानन्दप्रद अतुल समृद्धि को

इत्थं नन्दसुतं मुदा कथयति श्रीराधिका तत्सरो
दृष्ट्वाश्रूणि वहामि हन्त हृदये स्मृत्वात्मनाथौ कदा ॥५६॥

यत्रत्यास्तु लताद्रुमाः सुललिता गान्धर्विकाप्रेयसः
पुष्पाणां भरतो नता मृदुलसत्पत्रा मुदं कुर्वते ।
यत्र श्रीवृषभानुजा विजयते साम्राज्यमत्तान्तरा
कुण्डं तद्भविता कदा मम दृशोरानन्दकन्दप्रदम् ॥६०॥

यत्रत्याः पशु-पक्षि-वृक्षनिवहा राधाचरित्राम्बुधौ
मग्नाः श्रीवृषभानुजा पुरुकृपापूर्णान्तराः सन्त्यहो ।
तद्वृन्दाविपिनेश्वरीप्रियतमं श्रीकुंडमुद्वीक्ष्य ते
गान्धर्वाव्रजचन्द्रयो हृदि कदा स्फूर्त्तिर्भवेन्मोददा ॥६१॥

क्रीडा यस्य निकुंजकेषु ललिता वृन्दालिकालीगणैः
सम्यक् कारितसंगयोरतहृदोः श्रीराधिकाकृष्णयोः ।

देखिये" इस प्रकार नन्दनन्दन को आनन्द पूर्वक कहने लगती हैं, अहो ! उस राधिकासरोवर के दर्शन कर मैं कब आनन्दाश्रुओं को बहाऊँगा तथा हृदय में दोनों का स्मरण करूँगा ॥५६॥

वह श्रीराधाकुण्ड कब मेरे नेत्रों को आनन्दप्रद होगा कि जहाँ स्वयं श्रीवृषभानुनन्दिनी साम्राज्य गर्व में मत्त हृदया होकर विराजमान रहती हैं, जहाँ के लता-वृक्ष परम मनोहर हैं, राधिका के परम प्रिय पात्र हैं, पुष्पों के भार से नम्र हैं तथा मनोहर पत्तों से आनन्द देने वाले हैं ॥६०॥

जहाँ के पशु-पक्षि-वृक्ष समूह राधाचरित्र सागर में निमग्न रहते हैं तथा वृषभानुनन्दिनी की प्रबल कृपा से पूर्ण हृदय वाले हैं, वृन्दा-वनेश्वरी के उस प्रियतम कुण्ड का दर्शन कर कब तुम्हारे हृदय में राधा-व्रजचन्द्र की प्रमोददायिनी स्फूर्त्ति उदय होगी ॥६१॥

प्रेमाक्ता लसति ध्रुवं सहचरीवृन्दस्य नित्यं न वा
तद्दूरीकुरुतां ममान्तरगतावद्यं सदा श्रीसरः ॥६२॥

यन्नीरैस्तु हरिन्मणिद्युतिधरैः श्रीराधिकामाधवौ
कुर्व्वन्तावतिसेचनं विहरतश्चातुर्य्यकेलिनिधी ।
खेदेनातिचिरं विहारभरजेनारक्तनेत्राम्बुजौ
सा श्रीमत्सरसी रतिं वितनुतां गान्धर्व्विकापादयोः ॥६३॥

कुंजे यस्य सदा व्रजेन्द्रतनयो वृन्दावनाधीशया
प्रेमाम्भोधिनिमग्नमत्तहृदयो मोदोच्चयैः क्रीडति ।
तां दृष्ट्वा सरसीं कदा पुलकितः श्रीराधिकाप्रेयसं
स्मृत्वाहं विलुठामि मार्दितमना नीरैर्दृशोरञ्चितः ॥६४॥

जिस के निकुंजों में वृन्दादि सखियों के द्वारा संघटित विहारासक्त श्रीराधाकृष्ण की मनोहर क्रीड़ा होती रहती है, जहाँ सहचरियों की प्रेम सेवा निश्चल रूप से शोभायमाना है, वह श्रीराधासरोवर मेरे अन्तःकरण के मल को दूर करे ॥६२॥

जिस के इन्द्र नीलमणि कान्तिधारी जलराशि से केलिचातुरी के सागर राधिका-माधव परस्पर को अत्यन्त सींचते हुए विहार करते हैं तथा दोनों विहार की अधिकता के कारण उत्पन्न परिश्रम से रक्तनयन हो जाते हैं, वह श्रीमत्सरोवर राधिका पादपद्म में रति का विस्तार करें ॥ ६३ ॥

जिस के कुंजों में व्रजेन्द्रनन्दन, वृन्दावनेश्वरी के साथ प्रेमसागर में निमग्न, मत्त हृदय होकर अत्यन्त आमोद के साथ क्रीड़ा करते हैं उस राधिका सरोवर को देख कर मैं कब पुलकायमान होता हुआ राधाप्रिय श्रीकृष्ण का स्मरण कर उन्मत्त होकर लोट पोट हो जाऊँगा तथा नेत्र जलों से सिञ्चित सर्व्वांग होऊँगा ॥६४॥

यत्तीरे ललिता निकुञ्जवलिताश्रेणी सुरोचिश्चयै
र्वृन्दानां मणिरागिणां सुलसिता भाति प्रियेणादृता ।
नीरान्तः प्रतिविम्बिता मृदुतरैः पत्रोच्चयैः संयुता
तद्वृन्दाविपिनेश्वरीचरणदं पश्यामि कुण्डं कदा ॥६५॥

पुष्पाणां निकरं चिनोषि वलतो ना पृच्छ्य मां किं सदा
कस्त्वं मे पदमेतदस्ति न परस्यात्राधिकारो मनाक् ।
इत्थं यत्र किशोरशेखरमणी केलिकलिं विन्दत-
स्तत्कुण्डं नयनाग्रतो मम कदा भाग्येन संयास्यति ॥६६॥

यस्याः कुंजगृहे व्रजेन्द्रतनयः श्रीराधिकाकुन्तलां-
स्तुल्यान् संविरचय्य कंकतिकया वध्नाति धम्मिल्लकम् ।
जानुद्वन्द्वगतां विधाय मुदितां कुर्वन् प्रियां नर्मभिः
सा श्रीमत्सरसी कदा मम दृशोः पन्थानमायास्यति ॥६७॥

जिस के तट में दीप्तिमान कान्ति घटा से परम मनोहर वृक्षश्रेणी निकुंज रूप में विराजमान है, जो वृक्षगण इन्द्रनीलमणि सदृश हैं, जिन का आदर स्वयं श्रीहरि करते रहते हैं तथा जो जल के बीच प्रतिविम्बित और कोमल पत्रावली से परिशोभित हैं, ऐसे वृक्षों से युक्त, वृन्दावनेश्वरी के चरणों को देने वाले उस श्रीकुण्ड को मैं कब देखूँगा ॥६५॥

"हम को बिना पूछे तुम सदा बल पूर्वक पुष्पों का चयन करती हो तुम कौन हो? यह मेरा राज्य है, इस में औरों का किञ्चिन्मात्र अधिकार नहीं है।" इस प्रकार कहते हुए किशोर शेखर-रत्न दोनों जहाँ केलिकलह करते रहते हैं, वह श्रीकुंड कब मेरे नयनों के आगे प्रत्यक्ष होगा ॥६६॥

जिस के कुंज गृह में व्रजराजनन्दन विराजमान होकर श्रीराधा के केश कलाप को कंघी से सँवार चोटी गूँथ देते हैं तथा प्रिया को

यत्कुंजे परिषक्तया सुललितक्रीडाभरे राधया
पादाब्जं लघु धारयन् स्ववदनं स्प्रष्टुं छलादागतः।
ज्ञात्वावेशभरेण नन्दतनयः संतर्ज्जितोभूद्भृशं
तां दृष्ट्वा सरसीं कदा पुलकितैर्गात्रैर्युतः स्यामहम् ॥६८॥

यत्कुंजे विमलप्रमोदभरतो गान्धर्व्विका माधवं
पादान्ते पतितं विलोक्य कृपया मानं जहौ मानिनी।
तत्कुण्डस्य प्रदर्शनेन मुदितः प्रेमाश्रुपूर्णेक्षणः
स्वीयं जन्म कृतार्थतापदमितं ज्ञास्यापि किं भाग्यवान् ॥६९॥

यत्कुंजे वृषभानुजा दृढ़तरं मानाग्रहं प्राग्रहीत्
गोष्ठाधीशसुतेन चाटुनिवहैरभ्यर्थमाना यदा।

दोनों जंघा के मध्य में बिठा कर नर्म्म परिहास के द्वारा आनन्द प्रदान करते हैं, वह श्रीसरोवर कब मेरे नयनों के आगे प्रत्यक्ष होगा ॥६७॥

जिस के कुंज में जलक्रीड़ा के उपरान्त क्रीड़ासक्ता राधिका, श्रीनन्दनन्दन के चरण कमलों को धीरे-धीरे उठाते हुए अपने बदन का स्पर्श करने के लिये छल से आते हुए जान कर आवेश के साथ बारम्बार तर्ज्जन करती हैं, उस राधाकुण्ड का अवलोकन कर मैं कब पुलकित शरीर हूँगा ॥६८॥

जिस के कुंज में मानिनी राधिका विमल प्रमोद की अधिकता के कारण चरण सन्मुख पतित श्रीमाधव को देख कर मान का परित्याग कर देती हैं, उस राधाकुंड के दर्शन से प्रसन्न होकर तथा प्रेमाश्रु-परिपूर्ण नयन होकर भाग्यवान् मैं अपने जन्म को सार्थक मानूँगा॥६९॥

जिस के कुंज में गोपराजनन्दन के द्वारा मनोहर चाटु वचनों से प्रार्थ्यमाना होने पर भी वृषभानुनन्दिनी अत्यन्त मानिनी हो जाती हैं, उस समय मान के आग्रह से उनका मुख कमल अपूर्व्व शोभा को

तद्यग्रे वदनं निजं सुललितं पश्येति सख्याकृते
रम्यादर्शतले स्मितं कृतवती प्रेक्षे कदा तत्सरः ॥७०॥

यत्कुंजे परिघूर्णितः प्रियतमामालोक्य नन्दात्मजो
नाज्ञासीत्पतितं करान्मणिमयं वेणुं च पीताम्बरम्।
राधैषा समुपस्थिता किमु मनः स्वस्थो भवेत्थं घृणा
संक्लिद्यद्गिरयावदत्तदमलं पश्यामि कुण्ड कदा ॥७१॥

कुंजे यस्य मुकुन्दचन्द्रमुखतः संनिसृतं वंशिका-
नादं श्रीवृषभानुजा समभवत् श्रुत्वा सुघूर्णाकुला।
सख्या पाणितलेन संभ्रमभरात्संभालिता तस्य किं
गान्धर्वासरसः प्रदर्शनभवैर्जाड्यैर्वृतः स्यामहम् ॥७२॥

धारण कर लेता है। तब सखियाँ दर्पण लेकर "एक बार मुख कमल का अवलोकन तो कीजिये" ऐसा कहती हुईं सामने रख देती हैं तथा राधिका उस दर्पण में अपने क्रोधयुत मुख का अवलोकन कर संकुचित हो मन्दहास्य करने लगतीं हैं, उस मनोहर सरोवर को मैं कब देखूँगा। ॥ ७० ॥

जिस के कुंज में प्रिया श्रीराधिका का दर्शन कर नन्दनन्दन का मस्तक घूमने लग जाता है और उन के हाथों से मणिमयवेणु गिर पड़ता है तथा शरीर में पीताम्बर अलग हो जाता है तथा "यह देखो श्रीराधिका उपस्थित हो गई हैं, तुम्हारी ऐसी दशा क्यों होने लगी? सुस्थ होओ" इस प्रकार प्रेमविह्वल होकर गद्गद् वचन बोलते हुये अपने को सम्हालते रहते हैं, उस विमल सरोवर का मैं कब अवलोकन करूँगा ॥७१।

जिस के कुंज में मुकुन्दचन्द्र के मुखारविन्द से निर्गत वंशीनाद का श्रवण कर श्रीवृषभानुनन्दिनी घूर्णायमाना हो जाती हैं तथा

यत्तीरे कलहंसपंक्तिषु नवान् मुक्ताफलानां चयान्
सच्छिद्रान्परिवेषयत्यतिरसाद् वृन्दावनाधीश्वरी ।
आदायालिकरद्वयात्सुहसितैरानन्दिता प्रेयस-
स्तत्कुण्डं परिलोक्य भाग्यममितं मन्ये कदाहं निजम् ॥७३॥

श्रीवृन्दाविपिनेश्वरीं स्वमनसि स्मृत्वा व्रजेन्द्रात्मजो
राधेत्यक्षरयोर्युगं जपति यत्कुञ्जे सुरोमाञ्चितः ।
तत्रागत्य ततः प्रिया प्रकुरुषे किं मन्त्रमित्थं गिरा
नर्म्माण्यातनुते मुदा सरसिकां पश्यामि तां कह्यहम् ॥७४॥

कुर्वाते सुलतागृहेषु ललितां क्रीडां मुदा संयुतौ
केलिं गोकुलनागरौ परमया दास्यैकया सेवितौ ।

सखियों के द्वारा हाथों से सम्हाल ली जाती है उस राधासरोवर के दर्शन से उत्पन्न प्रेम-जड़ता से मैं कब विभूषित हो जाऊँगा अर्थात् राधा-कुण्ड का दर्शन करके मेरा शरीर कब स्तम्भित हो जायेगा ॥७२॥

जिस के तट में कलहंसों की पंक्ति इधर उधर डोलती रहती है, जिनको स्वयं श्रीवृन्दावनेश्वरी अत्यन्त रस के साथ सखियों के हाथों से नवीन मुक्ताफलों को लेकर उनको चुगाती हैं। वे सब मुक्ताफलों को चुगते हैं ऐसा देख कर परम प्रसन्न हो जाती हैं, उस श्रीराधाकुण्ड का दर्शन कर मैं कब अपने को अमित भाग्यवान मानूँगा ॥७३॥

जिस के कुंज में बैठ कर श्रीव्रजराजनन्दन अपने मन में वृन्दा-वनेश्वरी का स्मरण कर रोमाञ्चित कलेवर होकर "राधा" ये अक्षरों का जाप करते हैं तथा उस समय राधिका वहाँ आकर "आप क्या करते हैं ? किस मन्त्र का जप कर रहे हैं ?" इस प्रकार पूछती हुई नर्म्म विस्तार करती हैं, उस रसमय राधाकुण्ड को मैं कब देखूँगा ॥ ७४ ॥

रन्ध्रन्यस्तविलोचनैः प्रणयतो दृष्टौ सखीनां गणै-
स्तां राधासरसीं नतोऽस्मि विमलप्रेमाप्तयेऽहर्निशम् ॥७५॥

मर्हितात्ममुखाम्बुजे निजचयात्कस्तुरिकां निर्गतं
राधा कज्जलमातनोति नयने हस्ते गृहीत्वा प्रियम् ।
इत्थं यत्र वसन्तकेलिविहितानन्दौ किशोराधिपौ
भातस्तद्वरकुण्डमद्भुततमं वीक्षे कदा प्रेमतः ॥७६॥

ध्यायन् श्रीवृषभानुजां व्रजपतेः सूनुर्यदीये गृहे
दैवादागमने विलम्बितवतीमालोक्य खिन्नः पुरा ।
ईशा मे समुपागतेतिवचनं शार्य्याः समाकर्णयन्
एवास्मिन्मुदितान्तरस्तदमितानन्दं सरो मे गतिः ॥७७॥

जिस के लतागृहों में गोकुलनागर नागरी दोनों एकत्र हो कर मनोहर क्रीड़ा करते हैं, उस समय कोई एक परम अन्तरंगा सखी वहाँ रह कर उनकी सेवा करती है तथा सखियाँ लता के छिद्रों में नयन लगा कर इकटक देखने लगती हैं, उस राधासरोवर को विशुद्ध प्रेम प्राप्ति के लिये मैं नमस्कार करता हूँ ॥७५॥

श्रीराधा, कृष्ण को अपने मुख में कस्तूरी लगाते हुये देख कर अपने हस्त में काजल लेकर प्रिय के नयनों में लगाने लगती हैं, इस प्रकार बसन्तकालीन क्रीड़ा सुख में आनन्दित किशोरराज दोनों जहाँ विराजमान रहते हैं, उस अद्भुततम कुण्ड का दर्शन मैं कब प्रेम के साथ करूँगा ॥७६॥

जिसके गृह में बैठ कर ब्रजराजनन्दन दैवगति से राधा आगमन में विलम्ब देख कर ध्यान करते हुए व्याकुल चित्त हो गये थे तथा उस समय "मेरी स्वामिनी आ रही हैं" इस प्रकार सारिका के वचन सुन कर उस पर प्रसन्न हो गये थे, अमित आनन्द देने वाला वह श्रीराधासरोवर मेरी गति होवे ॥७७॥

स्वीयोद्यानकदम्बकेऽववचयं फुल्लप्रसूनावलेः
कुर्वाणा सुतमालकाकलनतो राधाभ्रमेणांचिता ।
अग्रे गोपकुलाङ्गनाविटमहो मुग्धा न किं पश्यथे-
त्युक्ते यत्र निजालिभिः प्रहसिता प्रेक्षे कदा तत्सरः ॥७८॥

राधामानदुराग्रहस्य कलनात्खिन्ने व्रजेन्द्रात्मजे
प्रीत्यार्त्ता ललिता तदश्रुनिकरं संमृज्य यूथेश्वरीम् ।
सन्तर्ज्य प्रसभं सुमेलितवती यस्या निकुञ्जान्तरे
सैषा मे सरसी विलोचनपथं प्राप्स्यत्यसाधोरपि ॥७९॥

यस्या गोपमहेन्द्रसूनुमनिशं संलोक्य शोभाभरं
ध्यायन्तं स्वमनोहराद्भुतगुणात्प्रेमोद्गलद्वाष्पिणाम् ।

जहाँ अपने वनों में प्रस्फुटित पुष्पों को बीनती हुईं सामने तमाल-वृक्ष को देख कर राधिका भ्रम में पड़ कर आलिंगन करने को दौड़ीं हैं परन्तु तमालवृक्ष जान कर लज्जित हो गईं । उस समय श्रीहरि का आगमन जान कर "सामने गोपकुलांगनाओं के विट श्रीहरि विराज-मान हैं हे मुग्धे ! तुम क्यों नहीं पहचानती हो" इस प्रकार सखियों के वचनों को सुन कर परम हर्षित हो गईं थी, उस राधाकुण्ड का दर्शन हमें कब होगा ? ॥७८॥

राधिका के प्रबल दुराग्रहयुत मान को देख कर व्रजराजनन्दन खिन्न हो गये । उस समय ललिता श्रीकृष्ण के अश्रु का मार्ज्जन करती हुई यूथेश्वरी को डाँटने लगी । इस प्रकार श्रीहरि व्याकुल होकर जिस के तट कुंज में पड़े रहैं, वह श्रीराधासरसी असाधु हमारे नयन पथ में क्या प्राप्त होगी ? ॥७९॥

जिसकी अद्भुत शोभावली का दर्शन करते हुए श्रीकृष्ण मुग्ध होकर ध्यान करने लगे तथा स्वयं मनोहर अद्भुत गुणों से परिपूर्ण

आगत्य प्रणयेन गण्डफलके स्पृष्ट्वा स्वनेत्रेण तं
राधा बोधयति प्रियं सरसिका भूयाद्गतिः सा मम ॥८०॥

यत्कुञ्जस्य लतासु पुष्पविभवं दृष्ट्वा प्रहर्षान्विता
राधा माधवमादिशत्यवचयं कर्त्तुं प्रसूनावलेः ।
उत्तंसं विरचय्य वर्य्यकुसुमैस्तेनाहृतं वीक्ष्य सा
संमोदादभिनन्दनं प्रकुरुते वीक्षे सरस्तत्कदा ॥८१॥

श्रीवृन्दाविपिनेश्वरीगुणगणान् गायन्व्रजेन्द्रात्मजो
वंश्या यत्र विराजते सुविहगैर्हंसादिभिर्वेष्टितः ।
अर्द्धामीलितलोचनैः प्रमुदितैर्गानामृतोन्मादितै-
स्तां राधासरसीं कदा जनुरिदं दृष्ट्वाधृतं मानये ॥८२॥

होने पर भी आज राधा प्रेम में विह्वल होकर जिस कुंड के तट पर पड़े रहे तथा रसिकनी श्रीराधिका वहाँ आकर प्रणय से श्रीकृष्ण के गण्डों का स्पर्श कर प्रबोध देने लगीं, वह श्रीराधासरोवर मेरी गति होवे ॥८०॥

जिसके कुंजों की लताओं में पुष्पवैभव देख कर श्रीराधिका प्रसन्न होकर पुष्पों की बीन लाने के लिये माधव को आदेश करती हैं तथा श्रीहरि आदेश पाकर मनोहर उत्तम पुष्पों से शिरोभूषण बना कर जब सामने लाते हैं तब उस समय श्रीराधा आनन्द के साथ अभिनन्दन करती हैं, उस राधिकासरोवर का मैं कब दर्शन करूँगा ॥८१॥

जहाँ व्रजराजनन्दन वंशी के द्वारा राधिका के गुणों का गान करते हुये विराजमान रहते हैं तथा हंसादि पक्षी-कुल नेत्रों को आधा मूँद कर प्रमुदित, गानामृत से उन्मादित होकर उनको घेर लेते हैं, उस राधासरसी को देख कर यह मेरा शरीर कब कृतकृत्य हो जायेगा ? ॥८२

गोष्ठाधीशसुतेन शिक्षितमतिप्रोद्यन्मतिं यद्गृहे
दक्षं निष्ठगिरं शुकं सुरुचिरं वृन्दावनाधीश्वरी ।
रक्षित्वात्मकराम्बुजे प्रणयतः प्राणप्रियस्योन्मदा
प्रेमाणं परिपृच्छति स्वविषयं प्रेक्षे कदा तत्सरः ॥८३॥

यस्याः श्रीवृषभानुजाव्रजविधू कुञ्जे प्रमोदावृतौ
पुष्पाणां मृदुलैः सुकन्दुकचयैः संताडयन्तौ मिथः ।
केलिं तौ कुरुतः सखीसमुदयान् विस्मापयन्तौ निजान्
श्रीराधासरसी भविष्यति कदा नेत्राग्रतः सा मम ॥८४॥

भृंगं यज्जलसंस्थपंकजकुलं त्यक्त्वागतं स्वोन्मुखं
वीक्ष्य त्वं मधुसूदनेहपुरतो रे धूर्त्त किं धावसि ।
इत्युक्ते प्रिययापसारयसि किं राधे त्वदेकाश्रयं
मामित्थं वदति स्म नन्दतनयः कुण्डं गतिस्तन्मम ॥८५॥

गोपराजनन्दन के द्वारा शिक्षा प्राप्त, अत्यन्त विचक्षण बुद्धिवाला, बोलने में अति चतुर दक्ष नामक मनोहर शुक को बृन्दावनेश्वरी अपने करकमलों में रख कर प्रेमोन्मत्ता होकर जहाँ प्राणवल्लभ के निज विषयक प्रेम को पूछती रहती हैं, मैं कब उस राधिका सरोवर का अवलोकन करूँगा ॥८३॥

जिसके कुंज में वृषभानुनन्दिनी और व्रजचन्द्र आनन्दित होकर पुष्पों के द्वारा विरचित कोमल गेंदों से परस्पर को ताड़ना करते हुए निज सखियों को चकित कर विविध क्रीड़ा करते हैं, वह श्रीराधासरसी कब मेरे नेत्र पथ में उपस्थित होगी ॥८४॥

जिसके जलस्थित पंकज समूह का त्याग कर अपने ओर आते हुये भ्रमर को देख कर "हे धूर्त्त मधुसूदन ! यहाँ मेरे आगे क्यों उड़ते हो" इस प्रकार राधिका के द्वारा निषेध किये जाने पर "हे राधे ! एक मात्र तुम्हारे आश्रित मधुसूदन हम को क्यों दूर करना चाहती हो ? अर्थान्तर

यस्मिन्नन्दसुतोऽधरे विनिहितं वेणुं शनैर्वादयन्
तिष्ठन्नीपतरोस्तले प्रियतमां राधां स्मरन् सन्ततम् ।
मिष्टं काञ्चननूपुरस्य निनदं श्रुत्वैव संमोहितो
व्यग्रोऽभूत्सरसी भविष्यति कदा नेत्राग्रतः सा मम ॥८६॥

यस्या गुल्मलता घनोदवसिते राधां व्रजेन्द्रात्मजो
होल्यां रेचकधारयार्द्रवसनां कृत्वा यदा संस्थितः ।
तद्यालीभिरितस्ततो मृदुतरैश्चूर्णैरभूत्ताडित-
स्तां श्रीमत्सरसीं कदा नयनयोरग्रे विधास्ये मुदा ॥८७॥

यस्या मंजुलमन्दिरोदरगतो राधागतिं मानयन्
श्रुत्वा नूपुरनादमुत्कलिकया निःसृत्य कुंजाद्बहिः ।
दृष्ट्वा श्रीवृषभानुजामुखविधुं प्राप्नोति हर्षं हरिः
सा रम्या सरसी ममापि पतितस्याग्रे कदा यास्यति ॥८८॥

में मधुसूदन अर्थात् भ्रमर को क्यों उड़ाना चाहती हो" ऐसा श्रीकृष्ण कहने लगते हैं वह राधाकुंड मेरी गति हो ॥८५॥

जहाँ नन्दनन्दन अधर में विराजमान बेणु का धीरे धीरे वादन करते हुए कदम्बवृक्ष के नीचे विराजित होकर निरन्तर प्रियतमा राधिका का स्मरण करते करते हठात् मधुर से मधुर सुवर्णनूपुरों के शब्दों को सुन कर राधा का आगमन जान कर मोहित हो व्यग्र हो जाते हैं, वह राधासरसी मेरे नेत्र पथ में कब गोचर होगी ॥८६॥

जहाँ के गुल्म-लताओं में छिप कर व्रजराजनन्दन होली के समय पिचकारियों की धारा से राधिका के वस्त्रों को भीजा कर जब खड़े हुये तब सखियों ने इधर उधर से आकर उन्हें घेर लिया तथा कोमल गुलालादि चूर्ण को उन पर उड़ायी, वह श्रीमत् सरसी कब नयनों के आगे उदय होकर आनन्द प्रदान करेगी ॥८७॥

जिसके मनोहर मन्दिर के भीतर विराजमान होकर श्रीहरि, राधा के आगमन को जान कर, उनके नूपुर शब्दों को उत्कंठा पूर्वक सुनते

वृक्षाः शक्रमणिप्रभाः परिवृता माणिक्यवल्ल्या क्वचित्
क्वापि स्फाटिकवर्चसा सुलतया संवेष्टिता वै द्रुमाः।
केऽप्यन्ये शुकपक्षवर्णलसिताः श्यामैः प्रसूनै र्युताः
श्रीवृन्दाविपिनेश्वरी-सरसिका-तीरे गता पान्तु वः ॥८६॥

येषां पुष्पफलश्रियं प्रमुदितो वीक्ष्य व्रजेन्द्रात्मजः
सार्द्धं राधिकयाभिनन्दति तले केलिं करोत्यन्वहम्।
ते वृन्दावननागराकलनजप्रोद्दाममोदोद्गतैः
पत्रैरङ्कुरसंचयैर्विलसिताश्चित्ते स्फुरन्तु द्रुमाः ॥९०॥

गान्धर्व्वागमनप्रतीक्षणकरो यन्मन्दिरे माधवः
श्रीराधाप्रहितां प्रसूनशयनं कर्त्तुं सखीमागताम्।

हुए बाहिर निकल आते हैं तथा राधिका के मुख कमल का दर्शन कर परम प्रसन्न हो जाते हैं, वह मनोहर सरसी मुझ पतित के आगे कब उदय होगी ॥८८॥

श्रीवृन्दावनेश्वरी की सरसी के तट पर विराजमान जो वृक्ष-गण कहीं तो सब इन्द्रनीलमणिमय हैं जिन से माणिक्यमयी लताऐं लिपटी हुई हैं, कहीं स्फटिकमणिमयी लताओं से परम शोभायमान हैं तथा कोई-कोई तो श्याम पुष्पों से विभूषित शुकपक्षी के वर्ण की भाँति परिशोभित हैं। वे समस्त वृक्षगण तुम्हारी रक्षा करें ॥८६॥

जिनके पुष्प-फलों की शोभा का दर्शन करके ब्रजराजनन्दन प्रमुदित चित्त हो राधिका के साथ उनका अभिनन्दन करते हुए उनके नीचे निरन्तर क्रीड़ा करते रहते हैं और जो सब वृक्ष वृन्दाबननागर के दर्शन से उत्पन्न अतिशय प्रमोद को प्राप्त पत्र-अंकुर समूह से विभूषित हैं, वे सब वृक्ष मेरे चित्त में स्फुरण होंवे ॥९०॥

जिसके मन्दिर में श्रीहरि राधागमन की प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं और पुष्पशय्या रचने के लिये राधिका के द्वारा भेजी हुई सखी को देख

दृष्ट्वा स्वस्तमना बभूव करणं तल्पस्य यत्तः स्वयं
तद्गोविन्दकलाविलासवसतिं श्रीमत्सरः पातु नः ॥६१॥

श्रीमद्गोकुलनागरीमणिरतिप्रीता व्रजेन्द्रात्मजं
वीक्ष्य स्वीयविलोकनेन विवशं स्वेदाम्बुपूरैर्वृतम्।
कुर्व्वाणा वसनाञ्चलेन वदनाम्भोजस्य संमार्ज्जनं
स्विन्नासीत्स्वयमेव यत्र सरसी सा पातु नः सन्ततम् ॥६२॥
पल्यङ्के वृषभानुजा सुमनसां सुप्ता प्रिये पादयो-
स्तन्याने कुतुवात्स्मयन्त्यतितरां सवाहनं यद्गृहे।
आवध्य भ्रुकुटीं व्रजेन्द्रतनयं तर्ज्जन्त्यसौ माधवे-
नावद्धाञ्जलिना स्ववक्षसि कृता तत्पातु नः श्रीसरः ॥६३॥
वर्षायां निजपीतवस्त्रसुवृतां कृत्वा प्रियां यद्गृहे
तस्थौ यर्हि लतान्तरालपतितैर्नीरैर्युताङ्गः पृथक्।

कर धीरज को धारण करते हैं तथा स्वयं ही शय्या रचने लगते हैं, वह गोविन्द के कलाविलास की निवासस्थली श्रीमत्सरसी हम सब की रक्षा करें ॥६१॥

जहाँ गोकुलनागरी शिरोमणी श्रीराधिका अत्यन्त प्रसन्ना होकर अपने दर्शन से विवश, स्वेदयुक्त श्रीअंग वाले, श्रीव्रजराजनन्दन का दर्शन करके उनके मुख कमल को अपने वस्त्राञ्चल के द्वारा पोंछती हुई स्वयं स्वेदयुक्त हो जाती हैं वह श्रीसरसी निरन्तर हम सब का पालन करें ॥६२॥

पुष्पों की शय्या पर सोई हुयी श्रीवृषभानुनन्दिनी को देख कर "हे प्रिये ! मैं आप के पादों का संवाहन करूँगा" ऐसा कह कर श्रीकृष्ण अग्रसर हुए। श्रीराधा ने भ्रकुटी मरोड़ कर माधव को तर्ज्जना करती हुई उसका निषेध किया। माधव ने हाथों में राधिका को उठा कर अपने वक्ष में लगा लिया। जिसके गृह में ये सब बात होती हैं, वह श्रीराधासरोवर हमारा पालन करें ॥६३॥

शैत्यस्याभिनयं मृषैव कलयन् सीत्कारपूरैस्तदा-
व्यक्तः श्रीवृषभानुभूपसुतया तस्यै सरस्यै नमः ॥६४॥
ब्रह्मेन्द्रादिकदेवलोकचयतो वैकुण्ठमत्युत्तमं
तस्मादप्युत्तमां मुकुन्दवसतिं श्रीद्वारकाख्यां पुरीम् ।
तस्याः श्रीमथुरां परां सुमहतीं तत्रापि वृन्दाटवी-
मत्राप्यद्भुतराधिकासरसिकां धन्यां हि मन्यामहे ॥६५॥
यन्नामश्रवणान्तरे निपतितं सर्व्वं मलं चेतसो
हन्ति प्रीतिभरेण संश्रुतममुं जन्तुं भवादुद्धरेत् ।
यद्दृष्टं वृषभानुजांघ्रिनलिनप्रोद्दामकैंकर्य्यदं
तद्धर्य्याखिलधाम मूर्द्धसु सदा कुण्डं नरीनृत्यते ॥६६॥

वर्षाकाल में जिसके लतागृहों में श्रीहरि निज पीतवस्त्रों के द्वारा राधिका को ढ़क कर विराजमान होते हैं और जिस समय लता के छिद्रों में से जल गिरता है उस समय दोनों भीज जाते हैं और तब श्रीकृष्ण को सुना कर राधिका झूठ मूँठ ही शीत लगने का अभिनय करती हुई सी सी करने लगती हैं, ऐसी-ऐसी जहाँ विविध लीलाऐं होती हैं, उस राधिकासरसी को मेरा नमस्कार है ॥६४॥

ब्रह्मा इन्द्रादिक देवलोक समूह से बैकुण्ठलोक अत्यन्त उत्तम है, उस से आगे मुकुन्द की निवासस्थली श्रीद्वारकापुरी श्रेष्ठ है । उस से मथुरा-नगरी अत्यन्त श्रेष्ठ है । मथुरामण्डल में वृन्दावन सर्व्वश्रेष्ठ है । वृन्दावन में भी अद्भुत राधिका-सरोवर ही परम धन्यतम है ऐसा हम सब का सिद्धान्त है॥६५॥

जिसका नाम कानों के भीतर प्रवेश करते ही चित्त के समस्त मलों का नाश कर देता है तथा प्रीति के साथ आश्रय करने वाले जीवों को संसार से उद्धार कर देता हैं और जिसका दर्शन करने पर वृषभानु-नन्दिनी के चरण कमलों में प्रगाढ़ कैंकर्य्य प्राप्त होता है, वह श्रीराधा-कुंड श्रेष्ठ समस्त धामों के मस्तक पर विराजमान होकर नृत्य कर रहा है ॥६६॥

श्रीगान्धर्व्वाव्रजेन्द्रात्मजपरिचरणाविष्टचेता नितान्तं
स्वान्तं शान्तं दधानः क्लि हृदयलसत्प्रेमपीयूषपूरः ।
स्नानं मानं प्रकुर्व्वन् हरिचरणरतेष्वातनोति प्रमोदाद्
यः कुण्डे तं हि राधा निजचरणयुगान्नैव भिन्नं करोति ॥६७॥
श्रीगान्धर्व्वापदाम्भोरुहगतहृदयः कुण्डतीरे कुटीरं
कृत्वा हित्वाखिलार्थं व्रजविधुमामितप्रेमतश्चिन्तयन् यः ।
वासव्यासक्तचित्तो भवति नरवरस्तेन राधामुकुन्दौ
स्वादेशस्थौ कृतौ तत्प्रणयरभसोन्मादितौ गौरनीलौ ॥६८॥
वृन्दारण्येशभक्तिः कमलभवशिवेन्द्रादिभिर्देववृन्दै-
र्मृग्या यद्वासचेतः करमिह तु जनं मार्गयन्ती सदास्ते ।
राधा यन्नामधेयश्रवणकरमपि स्वीयमामन्यतेऽमुं
तस्मै कुण्डाय नित्यं चटुभिरभिभृतां संनतिं हन्त कुर्मः ॥६९॥

जो व्यक्ति अनन्यभाव से श्रीराधा व्रजराजनन्दन की परिचर्य्या में आविष्ट चित्त होकर, अपने हृदय को शान्त रख कर तथा हृदय में प्रेम पीयूष प्रवाह को धारण कर आनन्द से राधाकुंड में स्नान करता हुआ और हरिभजन रत वैष्णव जनों के प्रति आदर भाव रखता हुआ निबास करता है, श्रीराधिका निश्चय उस व्यक्ति को अपने चरण युगल से पृथक् नहीं करती हैं ॥६७॥

जो नर श्रेष्ठ श्रीगान्धर्व्वा-राधिका के पद कमलों में हृदय देकर, कुंड के तट पर एक कुटी बना कर, समस्त कामनाओं को छोड़, अपार प्रणय के साथ व्रजचन्द्र का चिन्तन करता हुआ निष्ठापूर्व्वक राधाकुंड में वास करने की इच्छा रखता है वह राधा-मुकुन्द को वश में करके अपनाआज्ञाकारी बना लेता है तथा उसके प्रणयवेग से दोनों गौरनील-उन्मादित हो जाते हैं ॥६८॥

वृन्दावनेश्वर श्रीकृष्ण की भक्ति को ब्रह्मा-शिव-इन्द्रादि देवताएं ढूँढते रहते हैं परन्तु प्राप्त नहीं होते हैं। परन्तु यहाँ तो राधाकुण्ड में वास करने की इच्छा रखने वाले मनुष्य को स्वयं वह भक्ति ढूँढती

श्रीकुण्डे संततं यो निवसति पुरुषस्तस्य किंचिन्नकर्तुं
देवाः संघाः पितृणां मुनिवरनिचयाः सन्ति सामर्थ्ययुक्ताः ।
कृष्णोप्येतं नियोगे विरचयति किमु श्रीव्रजेन्दुःप्रयुक्त-
मेकां देवीं किशोरीं परिजनसहितां राधिकामन्तरेण ॥१००

रम्या भ्राम्यन्मृगीभिः शुकमुखवयसां राधिका कृष्ण नामा-
न्युद्भुतप्रेमपूराद्तिर्ललितमलं गायतां संचयैश्च ।
वृन्दारण्येशचित्तेऽप्यभिमतपरमानन्दसिन्धोर्विधात्रीं
गान्धर्वाक्रीडिताक्तामनुपमसरसीमद्भुतां संनमामि ॥१०१

राधागोपालमौलिप्रणयपदमतिप्रोल्लसद्वृक्षजालं
व्यालंबिप्रेममालं किशलयशयनस्फुर्जिताम्भोजमालम् ।
फुल्लानन्तप्रसूनावलिबलितमहो राधिकाभक्तिगम्यं
नम्यं दूरान्मुनीन्द्रैर्गिरिवरलसितं पातु वृन्दावनं नः ॥१०२

रहती है । जिस कुंड के नाम श्रवणकारी को भी राधा अपनाजन करके मानती हैं, उस कुंड के लिये नित्य स्तुति वाक्यों से हम नमस्कार करते हैं ॥९९॥

श्रीराधाकुंड में जो पुरुष निरन्तर वास करता हैं, देवता-पितृ तथा मुनिवरों का समूह उसका कुछ भी कर सकने में समर्थ नहीं होते हैं। व्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण भी औरों की सेवा में उसको नहीं जाने देते हैं। केवल अपने परिजनों के साथ देवी श्रीराधिका किशोरी की सेवा में ही उसे नियुक्त करते हैं ॥१००॥

भ्रमणशील मृगियों के द्वारा तथा अद्भुत प्रेम प्रवाह से राधा-कृष्ण के नामों का मनोहर गान करने वाले शुकप्रमुख पक्षियों के द्वारा मनोहरा, वृन्दाबननाथ के चित्त में भी अमित परमानन्द सागर का उत्पन्न करने वाली, राधिका की क्रीडाओं से संयुक्ता, अनुपम-अद्भुत सरसी को मैं सम्यक् प्रकार से नमस्कार करता हूँ ॥१०१॥

जो राधा-गोपाल-शिरोमणि के प्रणय को देने वाला है, जिस में उल्लसित वृक्षावली विद्यमान है तथा प्रेम की लतारूप मालाऐं लम्बाय-

श्रीवृन्दाविपिनेश्वरी हृदि धृता येनातिभावोच्चयाद्
गोष्ठेन्द्रात्मजशीर्षमंजुविलसत्पादाब्जसद्यावकाः ।
तस्योपर्य्यसकृत्पतत्यनुपमा कृष्णस्य भक्तोत्तमैः
प्रार्थ्या लोकलवस्य चाटुनिचिता दृष्टिः कृपार्द्रा स्वतः ॥१०३

स्निग्धा नीचतमेऽपि नन्दतनयप्रेमासवोन्मादिता
यर्हि श्रीजनका कृपां विदधिरे तर्ह्येव सामर्थ्यवान् ।
कश्चिच्छ्रीवृषभानुजांघ्रिनलिनोद्दामाभिलाषोद्धतः
श्रीराधासरसीस्तवं हि कृतवान् गोवर्द्धनाख्यो जनः ॥१०४

इति श्रीवृन्दाविपिनेश्वरीचरणारविन्दमिलिन्देन गोवर्द्धनेन रचितः
श्रीराधाकुंडस्तवोऽयं समाप्तिमगात् ॥

माना है, जिसकी किसलय शय्या पर कमलावली शोभित है और जो प्रस्फुटित अनन्त पुष्पों से भूषित है, राधिका भक्ति से जिसकी प्राप्ति होती है, मुनीन्द्रगण के द्वारा जो दूर से प्रणम्य है तथा जिसमें गिरिराज गोवर्द्धन विराजमान है वह श्रीराधाकुंड संसर्गी श्रीवृन्दाबन हम सब की रक्षा करें ॥१०२॥

गोपराजनन्दन के मस्तक पर मनोहर शोभायमान महावर रस को अपने चरणों में धारण करने वाली श्रीवृन्दावनेश्वरी को जिसने हृदय में धारण किया है उस भाग्यवान व्यक्ति के ऊपर स्वतः कृष्ण के श्रेष्ठ भक्तों के द्वारा प्रार्थ्यमाना, अनुपमा, करुणार्द्रा, चाटुमय राधिका की दृष्टि अथवा राधासरसी की दृष्टि पड़ती है ॥१०३॥

नीचजनों के प्रति स्निग्ध, नन्दनन्दन के प्रेममधुपान में उन्मत्त, श्रीमत् पितृचरण ने जब कृपा की है तब उससे सामर्थ्यवान् होकर गोवर्द्धनभट्ट नामक इस व्यक्ति ने वृषभानुनन्दिनी के चरण-कमलों की उद्भट अभिलाषा से उद्धत होकर श्रीराधासरसीस्तव का निर्म्माण किया है ॥१०४॥ (अनुवादक-कृष्णदास)

श्रीश्रीरूपसनातनस्तोत्रम्

रत्नं केचिद्‌वाप्य सन्तु मुदिता मुक्तेन्द्रनीलादिकं
ब्रह्मानन्दपरा भवन्त्विह परे केचित् परेशोन्मुखाः ।
श्रीवैयासकिचित्तसम्पुटगतं गौरानुगोद्‌घाटितं
राधाकाञ्चनरेखिकं मरकतं चिन्मो वयं गोकुले ॥ १ ॥
राधाभावाभिपूर्णं ब्रजरसधयनोद्‌भूतघूर्णं सुतूर्णं
नृत्यन्तं भक्तमध्ये निरुपममधुरे कीर्त्तने कृष्णनाम्नाम् ।
वर्षन्तं प्रेमसिन्धुं परमकरुणाया प्लावयन्तं त्रिलोकीं
वन्दे चैतन्यदेवं परिजनसहितं चारुचामीकराभम् ॥ २ ॥
श्रीचैतन्यहरे र्वियोगविकलो यः क्षेत्रसन्न्यासवा-
नध्यारात् परिहृत्य धाम जगतां नाथस्य पश्चाद् ययौ ।

कोई कोई मुक्ता-इन्द्रनीलमणि आदिक रत्नों को प्राप्त होकर प्रसन्न होते हैं, अपर कोई ब्रह्मानन्द परायण होकर अपने को धन्य समझते हैं, अन्य कोई परेश अर्थात् विष्णु-परायण होकर कृत्यकृत्य हो जाते हैं । परन्तु हम उन सब सुख-सामग्री को नहीं चाहते हैं । हम तो केवल व्यासनन्दन श्रीशुकदेव रसिकवर के चित्त रूप संपुट में रखा हुआ, गौरांगमहाप्रभु के अनुगत श्रीरूपादिक गोस्वामियों के द्वारा उद्‌घाटित, राधारूप सुवर्ण रेखा से शोभित किसी अलौकिक मरकत-मणि को गोकुल नगर में प्राप्त करने के लिये ढूंढ़ते हैं ॥ १ ॥

राधिका के भाव में परिपूर्ण अर्थात् निरन्तर राधाभाव आस्वा-दनकारी, ब्रजरस आस्वादन में उन्मत्त, भक्तों के बीच निरूपम मधुर श्रीकृष्ण-संकीर्त्तन में नृत्यशील, परम करुणा के साथ प्रेम समुद्र वर्षण के द्वारा तीन लोक को प्लावनकारी, परिकरों से वेष्टित, मनोहर सुवर्णकान्तिधारी, श्रीशचीनन्दन चैतन्यदेव की वन्दना करता हूँ ॥ २ ॥

वर्षन् प्रेमपयोनिधिं जयति यो गोविन्दपादाब्जयोः
वन्दे श्रीलगदाधरं पुरुदयं तं राधिकारूपिणम् ॥ ३ ॥
श्रीगोविन्दाङ्घ्रिकञ्जारुणरुचिनिरतान् राधिकादास्यसिन्धौ
मग्नान् श्रुत्वा पुराणोच्चयमधिहृदयं निश्चितात्मेशतत्त्वान् ।
दुर्व्वोधान् दुष्टवृन्दै व्रंजपतितनयासक्तभक्तातिमान्यान्
वन्देऽनन्तप्रभावानपरिमितकलापूरितांस्तीर्थपादान् ॥ ४ ॥
प्राणोत्क्रान्तिकफावरोधसमये श्रीरासलीलोत्सवं
वंशीगीतमतिप्रमोदसहितो यो युग्मगीतं तथा ।
आकर्ण्यामलकृष्णनाम वदने गायन् वने माधवं
दृष्ट्वोत्थाय जहावसून् स्वपितरं तं नौमि शिक्षागुरुम् ॥५॥

जो श्रीचैतन्य-महाप्रभु के वृन्दावन गमन के समय उनके वियोग में विकल होकर क्षेत्रसन्यास को अर्थात् शेषकाल पर्यन्त नीलाचल छोड़कर अन्यत्र नहीं वास करने की प्रतिज्ञा को परित्याग कर प्रभु के पीछे-पीछे चलने लगे थे, जो गोविन्द चरण कमलों के प्रेमसमुद्र का वर्षण करते हुए जय प्राप्त हो रहे हैं हम उन अत्यन्त करुणामय, राधिकास्वरूप श्रीलगदाधर पण्डित गोस्वामी की वन्दना करते हैं ॥३॥

श्रीगोविन्दचरण कमल की अरुण-मनोहर-कान्ति में आसक्त, राधिका के दास्य समुद्र में मग्न, पुराणों के श्रवण के द्वारा हृदय में मन्दजनों के दुर्व्वोध आत्मेशतत्त्व अर्थात् निजनाथ के तत्व का निश्चय कर देने वाले, ब्रजराजनन्दन श्रीहरि के आसक्तभक्तों में अत्यन्त माननीय, अनन्त प्रभावशाली, अपरिमित कलाओं से परिपूर्ण तीर्थपादों की वन्दना करते हैं ॥ ४ ॥

जिन्होंने प्राण-प्रयाण के समय कफ के द्वारा कंठ अवरोध होने पर भी श्रीरासलीला-उत्सव, वेणुगीत, युगलगीत का आनन्द के साथ श्रवण कर मुख में पवित्र कृष्ण नाम का ग्रहण करते हुए तथा श्रीवृन्दावन में माधव का दर्शन करते हुए उठ कर प्राणों का त्याग किया है उन शिक्षागुरु निजपिता को नमस्कार करते हैं ॥ ५ ॥

श्रीवृन्दाविपिनञ्च गोकुलभुवं गोपीगणं राधिकां
गोविन्दं सकलञ्च वैष्णवमतं नानागमेषु स्थितम् ।
मन्दो वेद यदीययैव दयया चैतन्यदेवानुगं
दीनोद्धारविशारदं नमत तं रूपाग्रजं सन्ततम् ॥ ६ ॥
मूढ़ोऽहं विषयाभिलाषवलितः संसारमार्गे भ्रमन्
क्व श्रीमद्वृषभानुजाचरणयो दस्योत्सवो वा क्व च ।
किन्तु त्वत्करुणानदीं सुविपुलां विश्वं पुनन्तीं बला-
दाचाण्डालमिमां विचार्य्य मुदितो रूपाग्रज त्वां भजे ॥७॥
यो राज्यं परिहृत्य पूर्व्वजयुतो निष्कण्टकं स्वेच्छया
श्रीचैतन्यपदारविन्दयुगलं धृत्वा मनस्युन्मदः ।
आगत्य व्रजभूमिवासमभितो वर्षन् रसाम्भोनिधीं
श्चक्रे श्रीयुतरूप स त्वमधमं मां स्वीयमङ्गीकुरु ॥ ८ ॥

जिनकी कृपा से यह मन्द जन श्रीवृन्दावन, गोकुलभूमि, गोपीगण, श्रीराधिका, श्रीगोविन्द, तथा नाना पुराण-शास्त्रों में मौजूद समस्त वैष्णव सिद्धान्त को जानने लगा है, उन श्रीचैतन्यदेव के अनुग, दीनोद्धार में विशारद, श्रीरूपगोस्वामी के अग्रज श्रीसनातनगोस्वामी जी के लिये निरन्तर नमस्कार करो ॥ ६ ॥

हे रूपगोस्वामि के अग्रज श्रीसनातन! मूढ़जन मैं विषय अभिलाषा में मोहित होकर इस संसारमार्ग में भ्रमण कर रहा हूँ। श्रीवृषभानुनंदिनी के चरणों का वह दास्यसुख कहाँ है अर्थात् वह सुख अत्यन्त अगम्य है। परन्तु तुम्हारी करुणारूप नदी अत्यन्त विस्तार तथा समस्त विश्व में चण्डाल पर्य्यन्त को भी पवित्र करने वाली है ऐसा निश्चय विचार कर तुम्हारा भजन करता हूँ ॥ ७ ॥

जिन्होंने पूर्व्वज श्रीसनातन के साथ निष्कण्टक विशाल राज्य-सुख को स्वेच्छापूर्व्वक त्याग कर मन में श्रीचैतन्यदेव के पदारविन्द का धारण करते हुए उन्मत्तता के साथ व्रजभूमि में आकर निवास

ग्रन्थालीं ललितां महोज्ज्वलरसां गान्धर्व्विकामाधव-
क्रीडाभिर्वलितां कवीश्वरनुतां चैतन्यदेवाज्ञया ।
विश्वं मोहघनान्धकारपतितं वीक्ष्यानुकम्पायुतः
श्रीरूपः प्रकटीचकार यमुनातीरे कुटीरे स्थितः ॥ ६ ॥
यत्काव्यं हृदयान्तरालमिलित-श्रीगौरचन्द्रेरितं
राधाकृष्णविलाससञ्चयचितं वृन्दावनश्रीभृतम् ।
श्रुत्वा नन्दतनूजभक्तनिकराः कम्पाश्रुरोमाञ्चिताः
उद्घूर्णन्ति लुठन्ति मत्तमनसः कुर्द्दन्ति नृत्यन्ति च ॥ १० ॥
तं राधापदपद्मसेवनरतं चैतन्यदेवप्रियं
वृन्दारण्यविलासरक्तमनसं गोपाङ्गनाभाविनम् ।

किया था, हे एतादृश रससमुद्र वर्षणकारि ! श्रीरूप ! आप मुझ अधम निजजन को अङ्गीकार कीजिये ॥ ८ ॥

यह विश्व भयानक मोहान्धकार में पड़ा हुआ था। उसको ऐसा देखकर आपका हृदय विशेष करुणा करने के लिये व्याकुल हो गया। आपने चैतन्यदेव की आज्ञा से व्रज में आकर यमुना तट में निवास करते हुए महा उन्नत उज्ज्वल रस से निर्म्मल, राधामाधव की क्रीड़ावलियों से युक्त, शिव-सनक-ब्रह्मा-नारदादि कवीश्वरों से संस्तुत ग्रन्थों का निर्म्माण किया है ॥ ६ ॥

राधाभाव आस्वादनकारी गौराङ्गप्रभु ने सुधासागर निज क्रीड़ा-रस विनोद के सञ्चय को श्रीरूप के हृदय में काव्यरूप से रखा था। वह आज भक्त-रसिकों के हितार्थ बाहिर प्रकट हुआ। वृन्दावन के श्रीधारणकारी जिन काव्यों का श्रवण कर नन्दनन्दन के भक्तगण कम्पाश्रु-पुलकावलि से भूषित होकर घूर्णायमान होने लगे तथा प्रेम में विवश होकर मत्तता के साथ पृथिवी में लोटने कूदने और नृत्य करने लगे ॥ १० ॥

जो सज्जन, उन राधापादपद्म सेवन में रत, श्रीचैतन्यदेव के प्रिय,

कृष्णातीरकुटीरवर्त्तिममलं रूपं समाश्रित्य यो
वर्त्तत प्रसभं तदीयहृदये भक्तिर्नरीनृत्यते ॥ ११ ॥
तावद्घोरकलिव्यथाकुलहृदस्तावच्च कर्म्मातुरा
स्तावद्योगकलाकलापवलितास्तावच्च नैयायिकाः ।
तावद्ब्रह्मरता भवन्ति मनुजाः ग्रन्थाः न गौरप्रियाः
यावत्कर्णपथं प्रयान्ति तरसा श्रीरूपवक्त्रोद्गताः ॥ १२ ॥
श्रीमद्रूपमुखाम्बुजाद्विगलितं चैतन्यदेवेच्छया
राधाकृष्णरसाम्बुधिं निरवधि प्रेमोन्मदा भूतले ।

वृन्दावन सम्बन्धि विलासों से आसक्तचित्त, गोपाङ्गना-भावनकारी अर्थात् निज सिद्धस्वरूप रूपमंजरी स्वरूप का चिन्तन करने वाले, यमुना तीर की कुटी में विराजमान श्रीरूपगोस्वामी का समाश्रय करता हुआ विराजमान रहता है वह परम भाग्यवान् है तथा उसके हृदय में निरन्तर भक्ति महारानी नृत्य करती रहती है ॥ ११ ॥

जब तक श्रीगौरांगहरि के महान् प्रियकर, रूप के मुखारविन्द उद्गत ग्रन्थावली,मनुष्यों के कर्णपथ में नहीं पड़ती है,तब तक मनुष्य घोर कलिव्यथा में व्याकुल रहता है । तब तक मनुष्य सब कर्म्म-परायण होते हैं अर्थात् उन ग्रन्थों का श्रवण करने पर उनकी कर्म्म-क्रिया में रुचि नहीं रहती है । तब तक मनुष्य सब योगसाधनाओं में अनुरक्त रहते हैं । अर्थात् उनकी योगप्रवृत्ति जाती रहती है । तब तक नैयायिकों की स्थिति है अर्थात् वे उन ग्रन्थों का अवलोकन कर फिर न्यायशास्त्र में प्रवृत्त नहीं होते हैं । तब तक मनुष्य सब ब्रह्मवादी होते हैं अर्थात् श्रीरूप के उन ग्रंथों का श्रवण कर ब्रह्म-सुख को भूल जाते हैं ॥ १२ ॥

जो भक्तगण कुम्भज अर्थात् अगस्त्य की भाँति बन कर श्री-चैतन्यदेव की इच्छा से श्रीमद्रूपगोस्वामी के मुखारविन्द से विगलित,

चित्रं भक्तजनाः पिवन्ति सततं ये कुम्भजातायिता
स्तेषां हा द्विगुणीभवत्यनुदिनं तत्रैव तृष्णा पुनः ॥१३॥
तुण्डे ताण्डविनीति मुख्यललितश्लोकावलीं यत्कृतां
मुक्ताभान्यतुलाक्षराणि च हरिगौरो विलोक्योन्मदः ।
घूर्णन् भक्तवृतो ननर्त्त सहसा यं सप्रमोदं स्तुवन्
को राधापददास्यमत्र लभते तं रूपसङ्गं विना ॥ १४ ॥
येनाशेषमिदं जगद् व्रजरसाम्भोधौ समाप्लावितं
यन्नामापि निशम्य कृष्णचरणे प्राप्नोति भक्तिं जनः ।
सोऽयं यस्य मनस्यमन्दकृपया चैतन्यदेवो हरिः
स्वं सर्व्वस्वमणिं दधौ वद सखे ! रूपात्परः को भुवि ॥१५॥

राधाकृष्ण रस सागर का प्रेमोन्माद के साथ निरंतर पान करते हैं वे इस भूतल में कृत्यकृत्य हैं। उनकी उनमें जो तृष्णा है वह दुगुनी हो जाती है ॥ १३ ॥

जिनके द्वारा विरचित "तुण्डे ताण्डविनी रतिं वितनुते तुण्डावली लब्धये" इत्यादि मनोहर ललित पद्यों का श्रवण कर तथा जिनके द्वारा लिखे हुए मुक्ताओं की भाँति अतुलनीय अक्षरों का अवलोकन कर श्रीगौराङ्ग हरि ने उन्मत्त होकर भक्तों के साथ उनकी प्रसन्नता पूर्व्वक प्रशंसा तथा स्तुति करते हुए घूर्णायमान नृत्य किया है, उन श्रीरूप के संग के बिना कौन मनुष्य राधिका के पददास्य को प्राप्त कर सकता है अर्थात् नहीं ?॥ १४ ॥

जिन्होंने इस समस्त जगत् को व्रजरस सागर में आप्लावित किया है, जिनके नाम का श्रवण मात्र मनुष्य श्रीकृष्णचरणों में भक्ति को प्राप्त करता है तथा स्वयं चैतन्य हरि ने जिनके मनमें निज सर्व्वस्व प्रेम चिन्तामणि को अर्पण कर रखा है हे सखे ! कहिये उन श्रीरूप के बिना जगत् में और कौन हो सकता है ? ॥ १५ ॥

अटन् कूले कूजे तरणिदुहितुर्निर्ध्यंधिरटन्
व्रजेन्दोर्नामानि क्वचिदपि नटन् प्रेमविवशः ।
लिखन् राधानन्दाःमजललितकेलिं क्वचिदपि
स्मरन् गौरं श्रुण्वन् क्वचिदपि च रूपो विलसति ॥ १६ ॥
कन्थामेकां दधानः करकयुतकरो राधिकाकान्तलीलां
गायन् ध्यायन् समोदं द्रुमतलवसतिः कृष्णनामानि गृन्हन् ।
कुर्व्वंन् रोलम्बभिक्षां क्वचिदपि परमाद्ब्राह्मणात् स्थूलवृत्तिं
रूपो नीचस्तृणेभ्यस्तरुरिव सहनो राजते काननान्तः ॥१७॥
गान्धर्व्वापदपद्मदास्यनिरतश्चैतन्यदेवप्रियः
श्रीगोविन्दकृपावलोकनपरो बृन्दाटवीकामुकः ।
भक्तप्रीतिकृदन्वहं नतशिरो भूतावलीमाननः
पीयूषाधिकभाषितो विजयते रूपानुयायी जनः ॥१८॥

श्रीरूप गोस्वामी ब्रज में इस प्रकार विलास कर रहे हैं । कभी तो स्वच्छंदता के साथ श्रीकृष्ण के नामों को रटते हुए यमुना के तटों में भ्रमण कर रहे हैं, कभी वा कहीं प्रेम में विवश होकर मनोहर नृत्य करते हैं । कहीं वा बैठ कर राधा ब्रजविहारी को ललित केलिओं को लिख रहे हैं । कहीं वा निज प्राणाधार श्रीगौरांगदेव को स्मरण कर रहे हैं ॥ १६ ॥

आज श्रीरूप, तृण से भी नीच बनकर तथा वृक्ष की भाँति सहिष्णु हो वृन्दावन में विराजमान हो रहे हैं । उनके हाथ में करुआ तथा कंधे में एक कंधा मौजूद है । आप राधाकान्त की लीलाओं का गान, प्रसन्नता के साथ ध्यान करते हुए वृक्ष के नीचे बैठे हुए हैं तथा निरन्तर कृष्ण नाम ग्रहण में व्यग्र हैं । मधुकरी ही आपकी वृत्ति है । कभी कहीं वा परमभक्त ब्राह्मण के निकट उनकी स्थूलवृत्ति भी थी॥१७॥

श्रीरूप के अनुयायी जन ही अमृत से अधिक मधुर बोलने वाले होते हैं । वे ही निरन्तर राधापादपद्म दास्य में निरत रहते हैं

दुर्द्दान्तेन्द्रियसञ्चयोऽपि विहितानन्तापराधोप्यसत्
संगेनोज्झितमाधवोऽपि कलितान्यस्त्रीप्रसंगेऽपि च ।
चैतन्यप्रियपार्षदोत्तमनुतं कारुण्यपूर्णान्तरं
श्रीरूपं परिचर्य्य पर्य्यटति कः संसारपाथोनिधौ ॥ १६ ॥
केचिद् घोरकलिप्रभावविजिताः पाषण्डमार्गे गताः
केचित् कर्म्मरताः परेऽवकलितज्ञानाध्वविश्रान्तयः ।
केचिद् भक्तिविभूषिताः सुविरलास्तत्रापि कृष्णोत्सुकाः
श्रीराधापददास्यलम्पटहृदः के सन्ति रूपं विना ॥ २० ॥

तथा चैतन्यचन्द्र के प्रिय बनते हैं और श्रीगोविन्दकी कृपा को सम्बल रखकर निरन्तर वृन्दावन में विचरण करते हैं । वे सब, भक्तों के प्रिय-कर, नम्रवदन, जीवों को सम्मानित करने वाले होते हैं ॥ १८ ॥

श्रीचैतन्यदेव के प्रिय-पार्षदों के द्वारा संस्तुत तथा प्रणम्य, कारुण्य से परिपूर्ण चित्त श्रीरूप की परिचर्य्या करता हुआ कौन व्यक्ति संसार सागर में भ्रमण करता है । अर्थात् श्रीरूप की सेवा से उसके संसार बन्धन नाश हो जाता है, अथवा वह परम भाग्यवान् है जोकि श्रीरूप का आश्रय करता हुआ इस संसार में सुख में भ्रमण करता है । यदि वा वह बलवान् इन्द्रियों के वश में है अथवा अनन्त अपराधी है किम्वा उसको कोई साथ नहीं देते हो, अथच निरन्तर परस्त्री-प्रसंग करता है तो भी वह श्रीरूप की परिचर्य्या से उन सब पापों से निर्म्मुक्त होकर परम प्रेमी बन जाता है ॥ १९ ॥

कोई कोई तो घोर कलि के प्रभाव से पराजित हैं, कोई वा पाषण्डमार्ग में रत हैं, कोई कोई कर्म्मपरायण होते हैं, अपर कोई ज्ञान मार्ग का आश्रय कर परम शान्त रूप बन जाते हैं । उनमें से अति विरल कोई कोई महाभाग्यवान् भक्तिपरायण होते हैं । फिर उनमें से श्रीकृष्ण में उत्कण्ठित भक्तगण महान् विरल हैं । परन्तु इन

हित्वा रूपपदाम्बुजं भवति यो राधाङ्घ्रिदास्योत्सुक-
स्तुङ्गं गेहमसौ तनोति न कथं रम्ये स्थले सैकते ।
वाहुभ्यां त्रिदिवं स्पृशेन्नहि कथं नो वा कथं च्छादयेत्
तूर्णं भूरिरजोभिरम्बरमणिं पङ्गुं न किं चालयेत् ॥ २१ ॥

गोपीभावतरङ्गरञ्जितमनाश्चैतन्यदेवो हरि-
स्तेषामेति कथं हृदं क्व च कथा राधापदाम्भोजयोः ।
वृन्दाकाननमाधुरी श्रुतिगता तेषां विदूरे नृणां
श्रीरूपाङ्घ्रिसरोजभक्तिमिह ये कुर्व्वन्ति नो दुर्म्मदाः ॥२२॥

सब से महान् विरल श्रीराधापाद्दास्यलम्पट कोई महान् से महान् भाग्यवान् जन, श्रीरूप की कृपा से ही देखने में आता है। अर्थात् श्रीरूप के बिना कोई एतादृश नहीं हो सकते हैं ॥ २० ॥

जो रूप के चरणकमलों का परित्याग कर श्रीराधाचरणों की दास्यता को प्राप्त करने के लिये उत्सुक होता है वह व्यक्ति वृक्षों से रहित मरुभूमि प्रदेश में क्यों ऊँचे गृह का निर्म्माण नहीं करता है। वह अपने वाहुओं के द्वारा आकाश का स्पर्श करने को क्यों नहीं जाता है। अथवा वह प्रचुर रजों के द्वारा आकाश में सूर्य्य को क्यों नहीं ढकना चाँहता है। किम्वा पंगु को पहाड़ में क्यों नहीं चढ़ाता है। तात्पर्य्य-श्रीरूप के बिना राधादास्य अत्यन्त असम्भव है ॥ २१ ॥

जो श्रीरूप के चरणकमलों में भक्ति नहीं करते हैं वे दुर्म्मद हैं। गोपीभाव की प्राप्ति उनकी नहीं है। श्रीचैतन्य-हरि उनके हृदय में किस प्रकार विराजमान हो सकते हैं अर्थात् उनके हृदय में से चैतन्यदेव दूर में रहते हैं। उन जनों के हृदय में श्रीराधापद कमलों को कथा कहाँ है अर्थात् वे सब उससे वंचित रहते हैं। उन मनुष्यों के वृन्दावन-माधुरी श्रवण में अत्यंत दूर है ॥ २२ ॥

श्रीगोविन्दपदारविन्दयुगलं कालाहि-तापापहं
वृन्दाकाननभूषणं व्रजवधूनेत्रालिभिः पूजितम् ।
श्रीराधाकुचकुड्मलान्तरगतं ध्येयं रसज्ञोत्तमैः
को लोके विदधाति लोचनपुरो रूपं दयालुं विना ॥२३॥
कः श्रीभागवतस्य तत्त्वममलं बोद्धुं क्षमो भूतले
को वृन्दावनमाधुरीं कलयितुं वक्तुं च धत्ते मतिम् ।
गोष्ठेन्द्रात्मजरूपमद्भुततमं को वा नयेन्मानसं
श्रीमन्तं करुणाकरं गुणनिधिं रूपं सबन्धुं विना ॥ २४ ॥
श्रीगोवर्द्धनघट्टवर्त्ममिलितां राधां पुरो माधवे-
नारुद्धां कुटिलभ्रुवं विरचितानन्दाब्धिपूराप्लवाम् ।
आलोक्यामितवाग्विलासमभितश्चक्रुः प्रमोदेन यं
सख्यस्तं जगति स्फुटं कथयितु रूपं विना कः क्षमः ॥ २५ ॥

दयालु श्रीरूप के बिना कौन लोग इस जगत् में कालसर्प दंशन ज्वलाहारी, वृन्दावन के भूषण, व्रजगोपियों को नेत्रालियों से परिपूजित, श्रीराधिका के कुचकुड्मल मध्यवर्त्ति, श्रेष्ठ रसिकों का ध्येयरूप श्रीगोविन्द-पदारविन्द युगल का अवलोकन कर सकता है ? अर्थात् नहीं ॥ २३ ॥

श्रीमान्, करुणाकर, गुणसागर सबंधु रूप के बिना कौन व्यक्ति इस भूतल में श्रीभागवत के विशुद्धतत्त्व को जानने में समर्थ होता है ? कौन वा श्रीवृन्दावन माधुरी का अवलोकन तथा बोलने के लिये समर्थ हो सकता है ? गोपराजनंदन श्रीहरि के अद्भुतरूप को कौन हृदय में ला सकता है ? अर्थात् श्रीरूपगोस्वामी की कृपा के बिना इन सबों की प्राप्ति असम्भव है ॥ २४ ॥

श्रीगोवर्द्धन की दानघाटी में प्राप्त, माधव के द्वारा अवरोधिता, कुटिलभ्रू वाली, आनंदसागर को बढ़ाने वाली श्रीराधिका को सामने देखकर सखियों ने प्रेमाद के साथ जो अमितवाणीविलास किया

यो नाट्ये राधिकाया व्यतनुत परमां प्रेमपाथोधिसीमा-
मुद्घूर्णा-चित्रजल्पादिकविकृतिचितां कृष्णरूपार्त्तिरूढाम्।
गूढां मूढैर्मनुष्याकृतिपशुनिवहै र्नादृतां गौरवेद्यां
स श्रीरूपः कदा मां निजजनगणनान्तः करिष्यत्यनाथम् ॥२६॥
राधायाः पूर्व्वरागं व्रजपतितनयस्याप्यसाधारणं यं
गायन्त्यश्रुप्लुताक्षाः पुलकितवपुषः स्वेदिनो भक्तवर्य्याः।
मानं कृष्णप्रवासं प्रणयचयचिलापारसम्भोगभेदा-
नाविश्चक्रे कृपालुः कलिमलनिवहध्वंसनः श्रीलरूपः ॥ २७ ॥

है अर्थात् श्रीराधा को आगे रखकर श्रीकृष्ण के साथ सखियों का जो वाग्विलास हुआ है उस वाग्विलास को काव्यरूप में वर्णन करने के लिये श्रीरूप के बिना जगत् में कौन समर्थ हो सकता है। अर्थात् कोई नहीं है। श्रीरूप ही एतादृश वर्णन में परम समर्थ हैं। आपने दानकेलिकौमुदीग्रंथ में इसका वर्णन किया है ॥ २५ ॥

जिन्होंने नाटक रूप में श्रीराधिका की परमोत्कृष्ट प्रेमसागर की सीमा रूप, उद्घूर्णा-चित्रजल्पादिक विकारों से युक्त, कृष्ण के रूप आर्त्ति में संरूढ़, मूढजनों के निगूढ़, मनुष्याकर पशुओं से अनादृत अर्थात् देखने में मनुष्य परन्तु कार्य्य में पशुतुल्य नरपशुओं के द्वारा अनादरणीय, श्रीगौरांग के द्वारा वेद्य अधिरूढ़—महाभाव उत्कण्ठा को अर्थात् मादनाख्य महाभाव को वर्णन किया है वे श्रीरूपगोस्वामी कब अनाथ मुझको अपने जनों में गिनेंगे। श्रीललितमाधव नाटक ग्रन्थ में आपने इन भावों को मधुर वर्णन किया है ॥ २६ ॥

कलिमल-ध्वंसकारी श्रीरूप ने करुणा के वश में आकर श्रीराधिका और श्रीकृष्ण के असाधारण पूर्व्वराग, मान, प्रवास, प्रणयों से युक्त अपार संभोगभेदों का आविष्कार किया है। जिनको गान करके भक्तश्रेष्ठ समुदाय नयनाश्रु से परिपूर्ण नेत्र, पुलकित शरीर तथा घर्म्माक्त हो जाता है। आपने विदग्धमाधव तथा ललितमाधव नामक

वैराग्यं विधिरागभक्तिममलान्नाना रसान् द्वादश-
प्रेमानं ब्रजवासिनां शुकमुखैर्विप्रर्षिभिः संस्तुतम् ।
गोपीनां परमां लसत्परमहाभावां समर्थां रतिं
राधायामिह मादनं वद सखे को वेत्ति रूपं विना ॥ २८ ॥
श्रीगोवर्द्धनयज्ञ-वैभवभरं श्रीरासलीलोत्सवं
श्रीराधाभिसृतिं कृतब्रजवधून्मादां प्रमोदान्विताम् ।
गीतालीं ललिताष्टकं निरूपमश्रीकृष्णनामस्तुतिं
रूपः स्वीयकृते दयालुमुकुटः प्रादुश्चकार प्रभुः ॥ २९ ॥
छन्दोभिर्विविधैर्व्रजेन्द्रतनयं कः स्तोतुमत्र क्षमः
कः शौरिं विरुदावलीप्रभृतिभिः स्तोत्रैर्मनस्यानयेत् ।

दोनों नाटक ग्रन्थ की रचना कर उन में उन भावों का सरस वर्णन किया है ॥ २७ ॥

हे सखे कहो तो श्रीरूप के बिना वैराग्य, विधिभक्ति, रागानुगाभक्ति द्वादशरस, ब्रजवासियों का प्रेम, शुक प्रमुख रसिकवरों से संस्तुत गोपियों का परमोत्कृष्ट महाभाव, समर्थारति तथा श्रीराधिका के मादनाख्य महाभाव इन सबको कौंन जान सकता है । अर्थात् कोई नहीं । आपने भक्तिरसामृतसिन्धु तथा उज्वलनीलमणि नामक दोनों ग्रन्थों में इन सबका सरस विस्तर वर्णन किया है ॥ २८ ॥

दयालु शिरोमणि, प्रभु श्रीरूप ने अपने स्तवावली नामक ग्रन्थ में श्रीगोवर्द्धन पूजा-वैभव, रासलीला-उत्सव, राधाभिसार, ब्रजवधू-उन्मादनकारी प्रमोदयुक्त गीतावली, ललिताष्टक, उपमा रहित श्रीकृष्ण-नाम की स्तुति इन विषयों का मधुर वर्णन किया है ॥ २९ ॥

दीनजनों में परम अनुरागी श्रीरूप के बिना कौन मनुष्य विविध छन्दों से ब्रजेन्द्रतनय की स्तुति कर सकता है ? कौन वा विरुदावली आदिक स्तोत्रों से श्रीकृष्ण को मन में ला सकता है ? तथा

ज्ञानीते मधुरं सगोष्ठविपिनं राधाञ्च कृष्णां मुदा
को मर्त्यः परमानुरागनिचितं दीनेषु रूपं विना ॥ ३० ॥
पूर्व्वाचार्य्यकृताः श्रुतिस्मृतिनुता युक्त्याचिताः कर्कशै-
र्वादै भ्रान्तिनिवारका दृढ़तराः सिद्धान्तसङ्घा भुवि ।
सन्तु श्रीशुकवाक्यसिन्धुममलं संमथ्य गौराज्ञया
स्वीयान् रूपमृते प्रपाययति कः श्रीकृष्णलीलासुधाम् ॥ ३१ ॥
चैतन्यानुगृहीतवर्य्यमतिना वृन्दाटवीवासिना
येन प्रेमसुधातिमत्तहृदयं विश्वं प्रचक्रेऽधुना ।
तं रूपं श्रय राधिकाप्रियकथां गायन् वस त्वं व्रजे
कर्म्मज्ञानपरान्नरान् हस सखे वंभ्रम्यसे किं वहिः ॥३२॥

कौन वा मधुर गोष्ठ-वृन्दाबन के साथ श्रीराधिका और श्रीकृष्ण को जान सकता है ? ॥ ३० ॥

पूर्वाचार्य्यों से कृत, श्रुति-स्मृति सम्मत, युक्तियों से परिपूर्ण, कर्कश वादों के द्वारा भ्रान्ति निरासक, सुदृढ़ सिद्धान्त समूह पृथ्वी में मौजूद हैं । परन्तु श्रीगौरांग प्रभू की आज्ञा से श्रीशुक-वचन समुद्र का मन्थन करके निज जनों को श्रीकृष्ण-लीलासुधा का सरस पान कराने वाला श्रीरूप के बिना अन्य कौन है अर्थात् कोई नहीं है—श्रीरूप ने ही सब कुछ किया है ॥ ३१ ॥

जिन्होंने चैतन्यदेव के अनुग्रह से अत्यन्त समर्थवान होकर वृन्दाबन में वास करते हुए प्रेमसुधा के द्वारा अभी समस्त विश्व को उन्मत्त हृदय किया है उन श्रीरूप का तुम आश्रय करो । श्रीराधिका की प्रियकथावली का गान करते हुए व्रज में वास करो तथा कर्म्म-ज्ञान परायण मनुष्यों का हास्य करो । हे सखे ! बाहिर क्यों बार-बार भ्रमण कर रहे हो ॥ ३२ ॥

विद्यारूपकुलादिगर्व्वसहितः संसारमार्गान्तरे
किं रे भ्राम्यसि दारसूनुनिरतस्तूर्णं मृतिं चिन्तय।
आगत्य व्रजभूमिमुन्मदतमौ राधामुकुन्दौ भज
श्रीरूपं श्रय गौरचन्द्रचरणाम्भोजं मनस्यानय ॥ ३३ ॥
नो जन्मानि गतानि ते कति सखे तीर्य्यङ्नृदेवादिकाः
योनीः प्राप्नुवतः कथं पतसि हा मोहान्धकूपान्तरे।
तत्तूर्णं भज रूपपादयुगलं श्रीराधिकामाधवौ
नित्यं चिन्तय मा वृथा क्षिप परं मानुष्यरत्नं भुवि ॥ ३४ ॥
अलं तीर्थैर्दानैरलमहह योगैः सनियमै-
र्धर्मैः साङ्ख्ये नालं किमु विरसया मुक्तिकथया।
अहो भोगैः किंवा विहितभवपातैः सुवितथैः
सदा रूपादिष्टव्रजमिथुनलीलाः स्मर सखे ॥ ३५ ॥

अरे सखा! तुम विद्या-रूप-कुलादि गर्व्वों से गर्व्वित होकर तथा स्त्री-पुत्रों में आसक्त हो इस संसार मार्ग में क्यों भ्रमण कर रहे हो। शीघ्र ही अपने मरण की चिन्ता कर। व्रजभूमि में आकर उन्मदतम राधामुकुन्द का भजन करो। श्रीरूप का आश्रय तथा मन में गौरचन्द्र के चरण कमल को धारण कर ॥ ३३ ॥

हे सखे! तुम्हारे कितने जन्म व्यतीत हो गये हैं तथा तुम ने कितने बार तीर्य्यङ्, मनुष्य, देवतादि योनि की प्राप्ति की है। अरे! तुम मोहान्धकूप के मध्य में क्यों गिर रहे हो। शीघ्र ही श्रीरूप के पादयुगल का भजन कर। निरन्तर राधिकामाधव का चिन्तन करो। इस मानुष शरीर रत्न को मत खो डारो ॥ ३४ ॥

अरे सखा! तीर्थ-दान-योग-यम-नियम-सांख्य-विरस मुक्ति-कथा में कुछ नहीं रखा है। बार-बार संसार में गिराने वाले भोगों में क्या धरा है। मेरे इस परम सिद्धान्त का धारण कर। निरन्तर श्रीरूप के द्वारा आदिष्ट व्रजबिहारि-बिहारिणी का स्मरण करो ॥३५॥

किं शास्त्रैर्विविधैर्मनो भ्रमकरैर्द्वेषादिदोषाकरे
संसारे परिणामतोऽतिविरसे वंभ्रम्यसे मोहतः ।
राधामाधवकेलिवर्षविपुलं श्रीकृष्णतृष्णाकुलं
रूपग्रन्थचयं विलोकय सखे पथ्यं च तथ्यं ब्रुवे ॥ ३६ ॥
प्राप्तस्त्वं मरणं भविष्यसि यदा कान्ता तनुजोऽथवा
भ्राता गेहमिदं धनं किमु सखे सङ्गे तदा यास्यति ।
मा व्यर्थं कुरु चिन्तया वितथया जन्मेदृशं दुर्लभं
श्रीरूपं ससनातनं श्रय सदा गौराङ्गदेवं भज ॥ ३७ ॥
दुर्दान्तेन्द्रियसञ्चयेन रभसादाकृष्यमानः सखे
संसारे खलु तावदेव निबिडां प्राप्नोषि पीडां मुहुः ।
तावद्घोरकलिव्यथावृतमतिस्त्वं वञ्चितोऽसि ध्रुवं
यावद्रूपपदाम्बुजातयुगलं नायाति चित्तं तव ॥ ३८ ॥

मन में भ्रम उत्पन्न करने वाले बिविध शास्त्रों में क्या धरा है । द्वेषादि दोषों का आकर, परिणाम में विरस इस संसार में तुम मोह के वश बार बार भ्रमण कर रहे हो । हे सखे ! उचित पथ्य बताता हूँ । श्रीराधामाधव की केलिवर्षा से विपुल, श्रीकृष्ण-तृष्णा से व्याप्त श्रीरूप ग्रन्थों का अवलोकन कर ॥ ३६ ॥

जब तुम्हारी मृत्यु होगी उस समय क्या स्त्री, पुत्र, भ्राता, घर, धन, ये सब संग में जायेंगे । सखा ! वृथा चिन्तवन मत कर । यह दुर्लभ मनुष्य शरीर है । निरन्तर श्रीसनातन के साथ श्रीरूप का आश्रय तथा गौरांगदेव का भजन करो ॥ ३७ ॥

हे सखे ! बलवान दुर्दान्त इन्द्रिय समूह से आकर्षित होकर संसार में उस प्रकार भयानक पीड़ा को बारबार प्राप्त कर रहा है । तुम्हारी मति घोर कलिव्यथा में व्यथित हो गई है । हाय ! तुम निश्चय वञ्चित हो रहे हो । क्यों कि तुम्हारा चित्त श्रीरूप के पदकमल युगल का आश्रय में नहीं रहा है ॥ ३८ ॥

किं नित्यं परिचिन्तयस्यपि मनः स्वर्गं यशश्च क्षमां
राज्यं ब्रह्मसुखं च निर्म्मलतरां वैकुण्ठलोकस्थितिम् ।
वृन्दाकाननकुञ्जलम्पटयुवद्वन्द्वस्पृहार्त्तिप्रदं
श्रीरूपं भज न त्यज व्रजभुवं गर्व्वं च सर्व्वं क्षिप ॥ ३९ ॥

स्त्रीपुत्रादिकबन्धुसञ्चयमिह त्वं नश्वरं चिन्तय
ब्रह्माणं द्विपरार्द्ध संस्थमपि तं कालाहिवक्त्रस्थितम् ।
मानुष्यं सुरदुर्ल्लभं कलय रे चित्त त्यजान्याः कथाः
श्रीरूपं वृषभानुजाङ्घ्रिनलिनासक्तद्विरेफं स्मर ॥ ४० ॥

मोहं प्राप्नुहि मा कलेवरभरे विट्कीटभस्मोत्तरे
सर्व्वग्रासिपिशाचिकावनितया नो वञ्चय स्वं जनुः ।
पार्श्वं मुञ्च मनः सदा विषयिनां योषित्सु तृष्णाजुषां
रूपं किं न भजस्यये व्रजयुवद्वन्द्वामलप्रीतिदम् ॥ ४१ ॥

अरे सखा ! मन में निरन्तर क्या चिन्तवन कर रहे हो । स्वर्ग-यश-क्षमा-राज्यसुख-ब्रह्मसुख, निर्म्मल परम वैकुंठस्थिति का चिन्तवन में क्या होगा । उन में श्रद्धा का परित्याग कर तथा वृन्दाबन कुंज के लम्पट-युगल की स्पृहा-आर्त्ति देने वाले श्रीरूप-गोस्वामी का भजन करो । व्रजभूमि का परित्याग मत कर । अभिमान को छोड़ दे ॥ ३९ ॥

रे चित्त ! स्त्री-पुत्रादि बान्धवों को तुम नश्वर समझ । द्विपरार्द्ध-समय स्थायि ब्रह्मा को भी कालसर्प के मुख में पड़ना पड़ता है ऐसा जान ले । यह मनुष्य जन्म सुरदुर्ल्लभ है । अन्य कथाओं का परित्याग कर श्रीवृषभानुनन्दिनी राधिका के चरण कमलों में भ्रमर श्रीरूप का स्मरण कर ॥ ४० ॥

परिणाम में बिट्-कीट-भस्म प्राप्त इस कलेवर में मोह को मत प्राप्त हो । समस्त ग्रास कारिणी, पिशाची बनिता के साथ अपने

साहङ्कारतया भयान्वितमति र्नो वैष्णवावज्ञया
गोपालेन्द्रतनूजपूजनविधि जानामि नाहं मनाक् ।
गेहे लीनमतिः प्रवीणमनसः स्वं मन्यमानोऽधमं
कां गतास्मि न वेद्मि हन्त कुगतिं श्रीरूप संरक्ष माम् ॥४२॥
श्रीराधे व्रजराजसूनुपदवीन्यस्तेक्षणे गोकुल-
स्त्रीरूपाभिमतिप्रतारणपटुश्रीपादपद्मद्युते ।
वृन्दारण्यनिवासकारणदये कारुण्यपूर्णान्तरे
श्रीरूपाङ्घ्रिरजोनिविष्टमनसं मां सर्व्वदा त्वं कुरु ॥ ४३ ॥
त्वत्तोऽन्ये समवाप्य सन्तु मनुजाः पूर्णा निजाभीप्सितं
श्रीराधाकुचकुट्मलान्तरमणे गोविन्द नन्दात्मज ।

शरीर को मत खो डार । निरन्तर योषित् में सतृष्ण विषयिजनों का संग परित्याग कर । अरे मन ! व्रज के युगल-सरकार श्रीराधिका कृष्ण में विशुद्ध प्रीति को देने वाले श्रीरूप का भजन क्यों नहीं कर रहा है ॥ ४१ ॥

मेरी मति अहंकार के द्वारा भयभीत हो रही है । क्यों कि मैंने कितने वैष्णवों की अवज्ञा कर डारी है। गोपराजतनय की मैं सेवा-विधि नहीं जानता हूँ । मेरी मति गृहादि-विषयों में संलग्न है । परन्तु मैं अपने को अति चतुर समझ रहा हूँ । नहीं जानता हूँ अधम मेरी क्या कुगती होगी। हे श्रीरूप मेरी रक्षा कीजिये ॥ ४२ ॥

हे श्रीराधे ! आप व्रजराजनन्दन के चरणों में निरन्तर दृष्टि डारने वाली हैं। आपके श्रीपादपद्म की कान्ति के द्वारा श्री गोकुल-स्त्रियों के रूप-लावण्य खर्व्वायमान हो जाता है । आपकी दया ही वृन्दावन निवास करने का कारण है तथा आपके हृदय करुणा से परिपूर्ण है । आप मेरे को श्रीरूप के चरण रजः में निविष्ट चित्त कराइये ॥ ४३ ॥

धृत्वा दन्ततले तृणं मुहुरिदं याचे दयालो सदा
धूलिस्यामिह जन्मजन्मनि विभो श्रीरूपपादाब्जयोः ॥४४

कुञ्जे मञ्जुलवञ्जुले मृदुतरं गुञ्जद्द्विरेफोच्चये
केकाभिर्विरुते हरिन्मणितले यूथीभिरामोदिते ।
राधागोकुलनागरौ प्रविलसत्कल्पद्रुमाधः स्थितौ
दोले दोलयितुं यदीच्छसि मुदा तर्ह्याशु रूपं भज ॥४७॥

वृन्दारण्यनिकुञ्जरन्ध्रविलसन्नेत्रः सखीरूपवान्
स्तम्भस्वेदविवर्णतायुततनुः कम्पाश्रुरोमाञ्चितः ।
राधामाधवकेलिवारिधिरसं पातुं समुत्कण्ठसे
त्वं चेद्रूपपदाम्बुजं भज सखे तर्हि प्रतीत्यादृतः ॥ ४६ ॥

हे श्रीराधिका के कुचकुट्मल के बीच मरकतमणि रूप श्री-गोविन्द ! हे नन्दनन्दन ! अन्य सब मनुष्य आप से निजअभिलाष का प्राप्त होकर परम कृत्यकृत्य हो जाते हैं । अस्तु यह कृपण जन निरन्तर दाँतों में तृण रख कर प्रार्थना कर रहा कि श्रीरूप के पादपद्मों में जन्म जन्म से अर्थात् प्रत्येक जन्म में धूलि बन जाऊँ ॥ ४४ ॥

भ्रमरों से गुंजायमान, मयूरों के शब्दों से मुखरित, इन्द्र-नीलमणिमय, यूथीपुष्पों से आमोद प्राप्त मनोहर कुंज में कल्पवृक्ष के तलदेश में हिंडोला के ऊपर बैठा कर श्रीराधागोविन्द को झुलावे के लिये यदि इच्छा रखते हो तो शीघ्र आनन्द के साथ श्रीरूप का भजन कर ॥ ४५ ॥

हे सखे ! तुम यदि मञ्जरीस्वरूप में स्तम्भ-स्वेद-वैवर्ण्यादि-भावों से भूषित होकर तथा कम्प-अश्रु-रोमाञ्चादि के साथ वृन्दारण्य निकुंज गृह के गवाक्षरन्ध्रों में नेत्र डार कर राधामाधव के केलिरस समुद्र का पान करने के लिये उत्कण्ठित होना चाहते हो तो श्रीरूप-पद्कमल का भजन करो ॥ ४६ ॥

राधाकुण्डतटे समन्जुलतमे वासन्तिकाभिमुँदा
पुष्पालीं वनमालिकाविरचनयाचिन्वतीं कौतुकात् ।
रून्धन्तं वत राधिकामतितरां तुष्यन्तमन्तमुँहुः
कृष्णं भर्त्सँयितुं यदीच्छसि सखे त्वं तर्हि रूपं श्रय ॥४७॥

कौलं धर्म्ममतीत्य भीतिमभितो घोरान्धकारं वनं
कालिन्दीं च पयोदसंप्लुतसृतिं सङ्केतकुन्जालये ।
प्राप्तायाः सरजः पदाम्बुजयुगं गान्धर्व्विकाया निजैः
केशैर्म्मार्जयितुं यदीच्छसि सखे तर्ह्यैव रूपं भज ॥ ४८ ॥

चैतन्यप्रियपार्षदानुगमतिं श्रीकृष्णसेवारतं
ये स्वीयं गुरुमाश्रिता अपि पुनस्त्यक्ता गता उत्पथम् ।

हे सखे ! यदि तुम वसन्त कालीन पुष्पों से अत्यन्त मनोहर प्राप्त श्रीराधाकुंड के तटप्रदेश में कौतुक वश वनमाला की रचना के लिये पुष्पों को चयन कारिनी श्रीराधिका स्वामिनी का अवरोध करने वाले श्रीहरि को भर्त्सित करने की इच्छा करते हो तब श्रीरूप का आश्रय कर ॥ ४७ ॥

श्रीराधा, कुलधर्म्म का उलघंन करती हुई सर्व्व प्रकार भय से रहित होकर वेगवती यमुना पार होकर मेघमाला से घोर अन्धकार प्राप्त वृन्दावन में प्राणनाथ के साथ मिलने के लिये पहुँची । उस समय यदि तुम उनके चरण कमलों की रजः कणिकाओं को अपने केशों से परिमार्जित करने की इच्छा करते हो तो श्रीरूप का भजन करो ॥४८॥

हे श्रीरूप ! हे सनातन प्रभो ! में हाथ जोड़ कर ऐसी प्रार्थना आपसे करता हूँ कि श्री चैतन्यदेव के प्रिय पार्षद के अनुगत, श्रीकृष्णसेवन में निरत, अपने गुरु का आश्रय कर फिर उनका परित्याग कर कुपथ में

तै ग्रंस्तैः कलिना खलैर्नहि कदाप्पस्तु भ्रमात् संगति-
र्हा श्रीरूप तथा सनातनविभो बद्धाञ्जलिः प्रार्थये ।। ४१ ।।

जो गमन करते हैं वे कलि करके ग्रसित हैं । इन खलों का संग भ्रम
से भी कभी न हो । ।। ४१ ।।

इति श्री गोवर्द्धनभट्टेन विरचितं
श्रीरूपसनातनस्तोत्रं
समाप्तम् ।।

श्री राधामाधवौ विजयेततराम् ।।

श्रीगोबिन्द मुकुन्द नन्दतनयानन्दाम्बुधे श्रीहरे !
वृन्दारण्यपुरन्दर ब्रजबिधो ! श्रीगोपिकावल्लभ ! ।
वंशीकाकलिकाकुलीकृतकुलानन्तावलालोकित !
श्रीकृष्ण स्फुर मेऽन्तरे करुणाया श्रीराधया सन्ततम् ।। १ ।।
श्रीगोकुलेन्द्रसुतमुरलीखुरलीजातमोहसन्दोहसंकुलम् ।
कुलावलाकुलोत्तंसमणिं श्रीराधिकां श्रये ।। २ ।।

अनुवादक-कृष्णदास,
(अन्नकूट दिवस)

सानुवाद संस्कृत भाषा में—

(१) अर्च्चाविधिः (संगृहीत) ।)
(२) प्रेमसम्पुटः (श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजीकृत) ।)
(३) भक्तिरसतरङ्गिणी (श्रीनारायणभट्टजीकृता) १)
(४) गोवर्द्धनशतक (श्रीविष्णुस्वामी संप्रदायाचार्य्य श्रीकेशवाचार्य्य कृत) ।)
(५) चैतन्यचन्द्रामृत और सङ्गीतमाधव (श्रीप्रबोधानन्द-सरस्वतीजी कृत) १।)
(६) नित्यक्रियापद्धति (संगृहीत) ॥=)
(७) ब्रजभक्तिविलास (श्रीनारायणभट्टजी कृत) २॥)
(८) निकुञ्जरहस्यस्तव (श्रीमद्रूपगोस्वामि कृत)
(९) महाप्रभुग्रन्थावली (श्रीमन्महाप्रभुमुखपद्मविनिर्गता) ।-)
(१०) स्मरणमङ्गलस्तोत्रं (श्रीमद्रूपगोस्वामिजीकृत) ॥=)
(११) नवरत्नं (श्रीहरिरामव्यासजी कृत) =)।
(१२) श्रीगोविन्दभाष्यं (श्रीपादबलदेवजी कृत) ४॥)
(१३) ग्रन्थरत्नपञ्चकम् १॥)
श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका (श्री श्रीरूपगोस्वामिजीकृता)
श्रीगौरगणोद्देशदीपिका (श्रीकविकर्णपूरजी कृता)
श्रीब्रजविलासस्तवः (श्रीश्रीरघुनाथदासगोस्वामिजीकृत)
श्रीसंकल्पकल्पद्रुमः (श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीजी कृत)
(१४) श्रीमहामन्त्रव्याख्याष्टकम् (सञ्चित)
(१५) ग्रन्थरत्नषट्कम् (सञ्चित) ॥)
(१६) श्रीगोवर्द्धनभट्टग्रन्थावली
(१७) सहस्रनामत्रयम् अथवा ग्रन्थरत्ननवकम्

गौड़ीयग्रन्थगौरवः—

ब्रजभाषा में प्रकाशित प्राचीन पुस्तकें—

(१) गदाधरभट्टजी की वाणी		॥)
(२) सूरदासमदनमोहनजी की वाणी		॥)
(३) माधुरीवाणी	(माधुरी जी कृता)	॥=)
(४) वल्लभरसिकजी की वाणी		।=)
(५) गीतगोविन्दपद	(श्रीरामरायजी कृत)	।)
(६) गीतगोविन्द	(रसजानिवैष्णवदासजी कृत)	।)
(७) हरिलीला	(ब्रह्मगोपालजी कृता)	=)
(८) श्रीचैतन्यचरितामृत	(श्रीसुबलश्यामजी कृत)	५॥)
(९) वैष्णववन्दना (भक्तनामावली)	(वृन्दावनदासजी कृता)	=)
(१०) विलापकुसुमाञ्जलि	(वृन्दावनदासजी कृता)	।)
(११) प्रेमभक्तिचन्द्रिका	(वृन्दावनदासजीकृता)	।)
(१२) प्रियादासजी की ग्रन्थावली		।=)
(१३) गौराङ्गभूषणमञ्जावली	(गौरगनदासजी कृता)	।)
(१४) राधारमणरससागर	(मनोहरजी कृत)	।)

श्रीश्रीराधारमणो जयति

श्रीरामशिष्यं कटके सुजन्मं पौगण्डकाले गुरुसान्निधाप्तम् ।
गौरोदयोर्व्यां परियान्तमाशु श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।१

गौराङ्गदासादिभिरुन्मदेन वृन्दावने वासकृतं सहर्षम्।
भावानुरागेण वदन्तमुच्चैः श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।२

गौडीयभक्तै रचिता रसाढ्या उद्दीपिता ग्रन्थवरा हि येन ।
साहित्यरत्नं ब्रजभूषणं तं श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।३

विज्ञैः समेतं सुमनःसरस्स्थं ग्रन्थानुलेखं परिशोधयन्तम् ।
सद्भक्तिसिद्धान्तनिधिं सनिष्टं श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।४

सौम्यं कृपालुं मधुभाषकण्ठं शुक्लाम्बरं क्षीणतनुं नितान्तम् ।
निःसङ्गमानन्दवपुं महान्तं श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।५

लीलास्मरन्तं सततं जपन्तं देवाग्र उन्मत्तपरं नटन्तम् ।
संकीर्तनामोदमोदं प्रसिद्धं श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।६

भक्ताधरोच्छिष्टललातिचित्तं स्नेहाभिमूर्तिं चलनातिधीरम्
भक्तानभक्ताञ्च नमन्तमुत्कं श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।७

रोमाञ्चकम्पाश्रुतरङ्गयुक्तं मुग्धं प्रशान्तं नितरां हसन्तम् ।
वैराग्यसिन्धुं करुणैकबन्धुं श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।८

इति श्रीश्रीवृन्दावननिवासिना श्रीश्रीवृन्दावनदासेन विरचितं
श्रीश्रीकृष्णदासाष्टकं सम्पूर्णम्